मनोरंजन पुस्तकमाला-१९

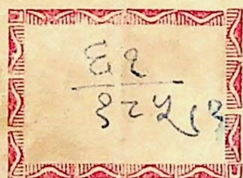
संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

शासनपद्धति

लेखक

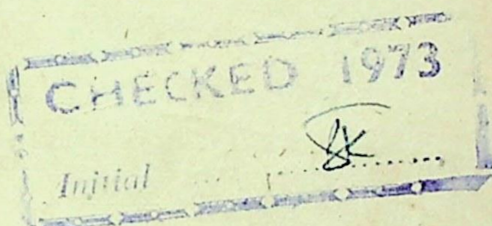
प्राणनाथ विद्यालंकार



काशी नागरीप्रचारिणी सभा



मनोरंजन पुस्तकमाला-१९



संपादक 

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

प्रकाशक 

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

शासनपद्धति ।



लेखक

प्राणनाथ विद्यालंकार ।

१९१७.

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस में मुद्रित ।

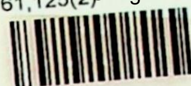
मूल्य १)

निवेदन ।

इस पुस्तक में भूमंडल के मुख्य मुख्य स्वतंत्र राज्यों की शासनपद्धतियों का विस्तारपूर्वक तथा अन्य स्वतंत्र राज्यों का साधारण वर्णन किया गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य यही है कि हिंदी भाषाभाषियों को इस बात का साधारण ज्ञान हो जाय कि फ्रांस, जर्मनी, प्रशिया, अमेरिका, स्विट्जलैंड, इंगलैंड तथा आस्ट्रिया हंगरी में राज्य का कार्य किस प्रणाली पर चलता है और राजा अथवा राज्य और प्रजा में कैसा राजनैतिक संबंध है। नवें परिच्छेद में इन सातों राज्यों को छोड़ कर शेष स्वतंत्र राज्यों का सूक्ष्म वर्णन कर दिया गया है। इस प्रकार भूमंडल के समस्त स्वतंत्र राज्यों का वर्णन इस पुस्तक में आ गया है। यद्यपि यह विषय विशेष विस्तार के साथ लिखा जाता तो एक बड़ी भारी पुस्तक बन सकती थी, यहां तक कि प्रत्येक राज्य के वर्णन की एक एक बड़ी पुस्तक अलग अलग हो सकती है, पर इतना विस्तार करना इस पुस्तकमाला का उद्देश्य नहीं है और न अभी इसकी आवश्यकता ही है। पहले किसी विषय का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है और जनसमुदाय को इसी की आवश्यकता भी है। किसी विषय के गूढ़ रहस्यों के अध्ययन करनेवाले थोड़े लोग होते हैं। उनके लिये इस पुस्तक-माला का प्रकाशन नहीं होता है।

अस्तु, इस पुस्तक में जिन जिन स्वतंत्र राज्यों की शासन-पद्धतियों का वर्णन दिया गया है उनमें से कुछ स्वतंत्र राज्य ऐसे हैं जिन के उपनिवेश, अधीन राज्य, करद राज्य अथवा रक्षित राज्य भी हैं। इन स्वतंत्र राज्यों के इस अंग का वर्णन पुस्तक के दसवें परिच्छेद में दिया गया है। इस विषय की गिनती मूल वृक्ष की शाखा प्रशाखाओं के रूप में की जा सकती है, परंतु जनसमुदाय के लिये यह जान लेना भी आवश्यक है कि किस किस स्वतंत्र राज्य के उप-निवेश आदि हैं और उनका शासन किस प्रकार हो रहा है। अतएव इस विषय का वर्णन भी संक्षेप में कर दिया गया है। आशा है यह पुस्तक उपयोगी और रोचक सिद्ध होगी जिससे ग्रंथकर्ता अपना परिश्रम सफल समझेगा।

ग्रंथकर्ता।



विषय-सूची ।

शासनपद्धति ।



पहला परिच्छेद ।

प्रस्तावना ।

पूर्ववचन। भिन्न भिन्न देशों की शासनपद्धति को समझना अत्यंत कठिन हो जाता है जब तक कि उन देशों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक दशाओं का परिज्ञान न हो । यह हम लोगों के अभाग्य की ही बात है कि हिंदी में अभी तक बहुत से युरोपीय देशों के इतिहास भी नहीं लिखे गए हैं ।

युरोपीय सभ्य देशों में आजकल प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्यप्रणाली का ही प्रचार है । विस्तृत भूमिभागवाले देशों में सफलता से यही रीति चल सकती है । प्राचीन काल के यूनानी राष्ट्रों में प्रजासत्तात्मक राज्यप्रणाली की ही प्रधानता थी । आजकल उस प्रणाली का अवलंबन करना कठिन है । इसमें संदेह भी नहीं है कि प्रजासत्तात्मक राज्य-प्रणाली के सिद्धांतों को यथासंभव ग्रहण करना तथा उन्हीं पर चलना प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्यप्रणालीवाले देशों का

उद्देश्य है। दिन पर दिन सभ्य देशों में राज्यकार्य में जनता का हाथ बढ़ाया जा रहा है। कई देशों में तो स्त्रियों को भी सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। इंगलैंड में भी स्त्रियों की ओर से इस अधिकार को प्राप्त करने का विशेष यत्न चिर काल से हो रहा है। स्विट्जलैंड ने किस प्रकार आदर्श राज्य का पद ग्रहण किया है यह हम आगे चल कर सविस्तर लिखेंगे, परंतु यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि स्विट्जलैंड की शासनप्रणाली प्रजा-सत्तात्मक राज्य के सिद्धांतों के अति समीप तक पहुँचती है। इसका कारण वहाँ पर जन-सम्मति-विधि तथा शक्ति-संविभाग के सिद्धांत का अवलंबन ही कहा जा सकता है।

शासनपद्धति की दृष्टि से युरोपीय राष्ट्र अमेरिका के बहुत ही कृतज्ञ हैं। राष्ट्रसंघटन का निर्माता अमेरिका ही है। जर्मनी, फ्रांस, स्विट्जलैंड आदि देशों को अमेरिका ने बहुत कुछ शासनपद्धति के विषय में शिक्षा दी है। स्विट्जलैंड ने तो अमेरिका को देख कर ही अपनी शासनपद्धति का निर्माण किया है।

जर्मनी की शासनपद्धति विचित्र ढंग की है। यही कारण है कि इस पुस्तक में जर्मनी पर विशेष विस्तार से लिखा गया है, क्योंकि बिना ऐसा किए उसकी शासनपद्धति को समझना पाठकों के लिये अति कठिन हो जाता। स्विट्जलैंड की जन-सम्मति-विधि तथा राष्ट्रीय उपसमिति, इंगलैंड की लार्डसभा तथा मंत्रिसभा, अमेरिका की राष्ट्रसभा (Senate) आदि शासनपद्धति की दृष्टि से द्रष्टव्य हैं।

अत: इस पुस्तक में इन दो आवश्यक अंगों पर भी विशेष प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

इतना पूर्ववचन कर के अब प्रजासत्तात्मक राज्य तथा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य आदि आवश्यक बातों पर मैं प्रकाश डालने का यत्न करूँगा जिससे भिन्न भिन्न देशों की शासनपद्धति का समझना बिलकुल सहज हो जाय।

प्रजासत्तात्मक राज्य तथा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य।

प्राचीन तथा नवीन प्रजासत्तात्मक राज्य में बड़ा भारी अंतर है। प्राचीन राज्य जहाँ प्रजा द्वारा स्वयं चलाया जाता था वहाँ नवीन राज्य प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है। यही कारण है कि इस पुस्तक में प्राचीन प्रजासत्तात्मक राज्य के लिये 'प्रजासत्तात्मक राज्य' शब्द तथा नवीन प्रजासत्तात्मक राज्य के लिये 'प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य' शब्द प्रयुक्त किया गया है। प्राचीन प्रजा-सत्तात्मक राज्य छोटे छोटे राष्ट्रों में ही सफलता से कार्य में लाया जा सकता है, परंतु बड़े बड़े विस्तृत भूमिभागवाले राष्ट्रों में तो नवीन प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य ही प्रयुक्त हो सकता है। प्राचीन प्रणाली की ऐसे राष्ट्रों में गति नहीं है।

प्रजासत्तात्मक राज्य

एथेंस नामी यूनानी नगर ही प्राचीन राज्य को समझने के लिये अनुशीलन के योग्य है। एथेंस में राज्यकार्य को चलाने के लिये दो सभाओं द्वारा कार्य होता था—(१) लोक सभा, (२) अंतरंग सभा (Senate)।

लोकसभा का बीस वर्ष की आयु से अधिक आयुवाला प्रत्येक नागरिक सभ्य था । दासों को यह अधिकार प्राप्त न था । एथेंस का प्रत्येक नगरनिवासी अपने आपको राज्य का एक अंग समझता था। नागरिकों की बहुसम्मति से ही संपूर्ण राज्यकार्य होते थे। सब को व्याख्यान देने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था । व्याख्यान दे कर के ही एथेंस में कोई व्यक्ति जनसम्मति अपनी ओर प्राप्त कर सकता था । उस प्राचीन युग में पत्रों का साम्राज्य प्रारंभ न हुआ था । पेरिक्लीज़ जैसे योग्य पुरुष जहाँ एथेंस के नागरिकों को अपनी वक्तृता की शक्ति से मोहित कर उन्हें उचित मार्ग पर चलाते थे वहाँ ऐसे भी कई एक दुष्ट पुरुष विद्यमान थे जो इसी शक्ति से जनता को हानि पहुँचाया करते थे।

सोलन ने राज्यकार्य को समुचित रीति पर चलाने के लिये एथेंस में लोकसभा का निर्माण किया था । लोक-सभा का मुख्य कार्य मुख्य शासक को चुनना तथा राज्य-कार्य को उचित विधि पर चलाने के लिये नियमों के विषय में सम्मति देना था । राज्य के अधिकारों को बड़े बड़े व्याख्याता लोकसभा द्वारा प्रायः कुचलवा दिया करते थे। सारांश यह है कि उस युग में लोकसभा ही राज्यकार्य में सीधे तौर पर सब कुछ थी । यहाँ पर यह जान लेना चाहिए कि लोकसभा के नियमों के संबंध में निम्नलिखित कार्य कहे जा सकते हैं—

(१) राजदूतों को नियत करना।

(२) विदेशी राष्ट्रों के संदेशों को सुनना ।

(३) युद्ध या शांति का निर्णय करना।

(४) सेनापतियों का नियत करना।

(५) सैनिकों की तनखाहें निश्चित करना।

(६) विजित नगरों के प्रबंध आदि को करना।

(७) नवीन देवताओं को उपासना के लिये मानना।

(८) धार्म्मिक उत्सवों को करना।

(९) नागरिकों को अधिकार आदि देना।

(१०) राष्ट्र के आय व्यय को देखना (३५ या ३६ दिन के बीच में एक बार)

(११) मुद्रा निर्माण करना।

(१२) कर लगाना।

(१३) सड़कें, मकान, मंदिर, पुल आदि के बनाने में अपनी सम्मति देना।

(१४) विशेष विशेष संदिग्ध विषयों में न्यायालय विभाग का कार्य भी करना।

सोलन ने लोकसभा की शक्ति को ठीक मार्ग पर चलाने के लिये 'अंतरंग सभा' का भी निर्माण किया था। अंतरंग सभा के सभ्य प्रायः अच्छे अच्छे धनाढ्य तथा बड़े बड़े विद्वान् होते थे। परंतु क्लिस्थनीज़ के काल से यह बात बदल गई। अंतरंग सभा इसकी अपेक्षा कि लोकसभा को अपने पीछे चलाती स्वयं ही उसके पीछे चलने लगी। यह पहले लिखा जा चुका है कि एथेंस में एक मुख्य शासक लोकसभा द्वारा चुना जाता था। इस मुख्य शासक को हम आगे चल कर प्रधान के नाम से लिखेंगे।

एथेंस में भिन्न भिन्न अभियोगों के निर्णय के लिये भिन्न भिन्न न्यायालय थे। सब से बड़े न्यायालय के ६००० सभ्य थे। छोटे छोटे न्यायालयों में किसीके १०० सभ्य थे तो किसीके १०००। पाठक यह स्वयं ही समझ सकते हैं कि जिस न्यायालय में इतने इतने सभ्य हों वह न्याय कहाँ तक कर सकता है। न्याय एक ऐसी चीज नहीं है जो कि बहु-सम्मति से प्राप्त हो सके। इतने बड़े न्यायालय की जो बुराइयां होती हैं एथेंस ने वे सब की सब सहीं।

प्रजासत्तात्मक राज्य की आलोचना।

प्रजासत्तात्मक राज्यवाली जाति में शासन की अपेक्षा स्वतंत्रता का प्रेम बेशक अधिक होता है। एथेंसवालों ने शिल्प में जो पूर्णता प्राप्त की थी उसमें उनकी स्वतंत्रता ही काम कर रही थी। प्रजासत्तात्मक राज्य में सारी की सारी जाति सीधी शासक स्वयं अपने आप होती है। जातीय सभा द्वारा, जनता स्वयं उपस्थित हो कर अपने शासन का कार्य स्वयं ही करती है। परंतु यह वहाँ संभव हो सकता है जहाँ कि राष्ट्र बहुत छोटा है। बड़े बड़े राष्ट्रों में इस शासनपद्धति को प्रचलित करना बहुत ही कठिन है।

प्रजासत्तात्मक राज्य में एक दूषण यह भी है कि योग्य योग्य व्यक्ति प्रजा को अपनी उँगलियों पर नचाते हुए उसकी संपूर्ण शक्ति अपने हाथ में ले लेते हैं। इससे जो हानि पहुँचती है वह यूनान के इतिहास से सर्वथा स्पष्ट है।

थूसीडाइडीज़ (Thucydides) ने एक बार कहा था

कि—" Athens was a democracy in name, but in reality it was under the rule of the first of its citizens" (See Thucydides ii-69).

अर्थात् "एथेंस प्रजासत्तात्मक राज्य तो नाम मात्र का था, वास्तव में तो वहाँ उसके नागरिकों में से मुख्य नागरिक का ही राज्य था"। अतः प्रजासत्तात्मक राज्य को सफलता से चला सकने के लिये प्रजा का आचार तथा विचार बहुत ही उन्नत तथा दृढ़ होना चाहिए। इसके बिना यह संभव नहीं कि आदर्श शासनपद्धति (प्रजासत्तात्मक) सफलता से चल सके । इसमें संदेह नहीं है कि प्रजासत्तात्मक शासनपद्धति में नागरिकों की शासनशक्ति उन्नत हो जाती है । उन्हें जातियों के नियमों तथा इतिहासों को देखना पड़ता है। उनके संकुचित विचार दूर हो जाते हैं । परंतु प्रश्न तो यह है कि शक्ति की मोहिनी मदिरा से उनकी रक्षा कैसे की जाय ! जनता में दल बन जाते हैं जिन में राज्यभक्ति के स्थान पर वैय्यक्तिक ईर्ष्या द्वेष प्रबल हो उठते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि जनता के दलों के नेता जनता को अपनी वक्तृता या लेखन शक्ति से वशीभूत कर एक दूसरे का गला कटवाते हैं। यही कारण था कि एथेंस की उन्नति क्षणिक रही और जब उसका अधः-पतन प्रारंभ हुआ तो फिर वह अपने आपको न सँभाल सका। प्रजासत्तात्मक राज्य का आधारभूत 'समानता' का सिद्धांत है। प्रत्येक नागरिक एक दूसरे के समान है चाहे वह योग्य हो चाहे अयोग्य। इस समानता का ही यह परिणाम

था कि जो व्यक्ति उन्हें हानिकर मालूम पड़ता था उसे वे 'देशत्याग' का दंड दे देते थे जिससे वह एथेंस को छोड़ कर अन्यत्र कहीं बस जाता था। सारांश यह है कि प्रजासत्तात्मक राज्य वहीं सफलता से चल सकता है जहाँ राष्ट्र छोटा हो, उसके नागारिक आचार विचार में समुन्नत तथा दृढ़ हों, उनका जीवन सादगी से परिपूर्ण हो तथा उनमें समानता का सिद्धांत काम कर रहा हो।

आजकल प्रजासत्तात्मक राज्य का चिह्न यदि कहीं मिल सकता है तो वह केवल स्विट्जलैंड में है। प्रायः अन्य सभ्य देशों में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का ही प्रचलन है। प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य के भी सफलता से चल सकने के लिये जनता में विशेष विशेष गुणों की आवश्यकता होती है। प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की अनिच्छुक, शासन-भार से घबड़ानेवाली, उदासीन तथा आलस्य से परिपूर्ण जनता में यह शासनपद्धति समुचित विधि पर नहीं चल सकती है। "मिल महाशय ने लिखा है कि कई जातियों का यह विचित्र स्वभाव होता है कि वे शासकों के आत्याचार को चुप चाप सहन कर लेंगी परंतु उसके विरुद्ध आवाज कभी भी न उठावेंगी। ऐसी जातियों में यदि यह शासनपद्धति प्रचलित कर दी जाय तो यही परिणाम होगा कि वे अत्याचारी शासक को ही अपना शासक चुना करेंगी।" स्थानीय प्रेम या मतमतांतरों के प्रेम से परिपूर्ण संकुचित विचारवाली

प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य।

जातियाँ भी ऐसी शासनपद्धति के अवलंबन करने के अयोग्य हैं, क्योंकि ऐसा करने पर भिन्न भिन्न दलों के मतमतांतर संबंधी झगड़ों का प्रवेश शासन में हो जायगा जिससे एक दूसरे दल का घात किया जाना स्वाभाविक ही है। कई जातियों में व्यक्तियों को दूसरों पर हुकूमत करने में ही आनंद आता है। ऐसी जातियों में जब प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का ग्रहण किया जाता है तब हुकूमत करने के इच्छुक व्यक्ति अपने आपको शासक के तौर पर चुनवा लेते हैं तथा अपने अपने निचले अधिकारियों पर कठोरता का बाजार गरम कर देते हैं। सारांश यह है कि चाहे प्रजासत्तात्मक राज्य हो चाहे प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य हो जातीय आचार की श्रेष्ठता सभी में आवश्यक है। इस बात का रहस्य तब बिलकुल प्रत्यक्ष हो जाता है जब कि हम भिन्न भिन्न सभ्य देशों की शासनपद्धतियों का निरीक्षण करते हैं। अमेरिका तथा इंगलैंड की शासनपद्धतियों को देख कर ही युरोप की अन्य जातियों ने अपनी अपनी शासनपद्धतियों को बनाया है। परंतु क्या कारण है कि सब देशों की शासन-पद्धतियाँ जिन जिन स्थानों पर एक दूसरे से मिलती भी हैं वहाँ पर भी कार्य में एक दूसेर से सर्वथा भिन्न हैं। इंगलैंड की मंत्रिसभा की रीति पर फरासीसी मंत्रिसभा क्यों न सफलता से काम कर सकी? इसी लिये कि दोनों जातियों का आचार व्यवहार भिन्न भिन्न है। यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि जातीय आचार व्यवहार के सदृश देश की भौगोलिक, प्राकृतिक तथा राजनैतिक स्थितियों का भी शासन-

पद्धति पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। स्विट्ज़लैंड में 'जनसम्मति' विधि सफलता से चल सकी, अन्य देशों में नहीं। यह केवल इसी लिये कि वह पार्वतीय प्रदेश हैं, उसके राष्ट्रसंगठन के राष्ट्र छोटे छोटे हैं।

इंगलैंड तथा अमेरिका में न्यायालय विभागों को जो प्रधानता प्राप्त है, वह अन्य युरोपीय देशों में नहीं है। क्योंकि इंगलैंड तथा अमेरिका को शत्रुओं से इतना डर नहीं है जितना युरोपीय महाद्वीप के भिन्न भिन्न राष्ट्रों को है *।

प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य में शासन प्रजा के ही हाथ में होता है परंतु कुछ एक प्रतिनिधियों द्वारा, न कि स्वयं। इससे जहाँ लाभ हैं वहाँ हानियाँ भी हैं। जनता में सब के सब व्यक्ति उन्नत विचार तथा आचार के तो होते ही नहीं हैं। शासन का कार्य इतना सहज नहीं है कि उसे सब ही कर सकें। इस दशा में जनता के योग्य योग्य व्यक्तियों को शासन का भार दे देना लाभदायक ही प्रतीत होता है। इसमें संदेह नहीं है कि एकसत्तात्मक राज्य की अपेक्षा प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य बहुत ही अधिक उत्तम है। एकसत्तात्मक राज्य तो तब ही कोई जाति प्रचलित कर सकती है जब कि वह शासन के कार्य को सब से अधिक सहज समझती हो। यह माना कि कभी कभी ऐसे राजा भी राज-सिंहासन पर आ जाते हैं जिनकी योग्यता तथा शक्तियाँ अपूर्व होती हैं, परंतु इससे क्या? बीसों बेहूदे, बेवकूफ, पागल

---

* See Mill's Representative Government Chap. IV.

राजाओं के राज्य की बुराइयों को वह अकेला कहाँ तक दूर कर सकता है। जाति की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये वंशागत राजाओं का राज्य तो सर्वथा ही असमर्थ है। यही कारण है कि प्राय: संसार की सभी जातियों ने वंशागत राजाओं के राज्य की सभा को मटियामेट कर दिया है। जिन जिन जातियों पर वंशागत राजा राज्य करते हैं वहाँ पर भी उनकी शान ही शान रखी हुई है, उनकी संपूर्ण शक्ति तो जाति ने अपनी अपनी प्रतिनिधि सभाओं तथा द्वितीय सभाओं को दे दी है। प्रतिनिधि सभाओं में अभी तक जनता के योग्य योग्य व्यक्तियों को पूरे तौर पर आने का अवसर नहीं मिलता है। परंतु इस धरणा में शासनपद्धति का दोष नहीं कहा जा सकता है। इस प्रकार की बुराइयों के दूर करने के लिये तो जाति में उच्च शिक्षा का होना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है, और इस बात के लिये आज कल प्राय: सभी जातियाँ यत्न भी करती रही हैं। सभ्यों के वार्षिक, त्रैवार्षिक आदि चुनाव से किसी एक समुदाय के पास लगातार शासन की शक्ति नहीं रहने पाती। परिणाम इसका यह होता है कि जाति में किसीको भी स्वेच्छाचारी होने का अवसर नहीं मिलता।

राजनीति विज्ञान के पिता मांटस्क्यू (Montesquieu) का कथन है कि—"यदि नियामक तथा शासकशक्ति किसी एक व्यक्ति या समूह के पास इकट्ठी हो तो जाति की स्वतंत्रता का नाश होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जाति को इस बात का सदा

शक्ति-संविभाग।

ही भय बना रहेगा कि राजा या राष्ट्रसभा स्वेच्छाचारी नियम बना कर स्वच्छंदता से ही उनका प्रयोग करेगी। इसी प्रकार न्याय संबंधी शक्ति को नियामक तथा शासन-शक्ति से सर्वथा पृथक् न कर दिया जाय तथा उसे यदि नियामकशक्ति का सहायक बना दिया जाय तो जो नियम बनानेवाला होगा वही न्यायाधीश भी हो जायगा। परिणाम इसका यह होगा कि जाति के व्यक्तियों का जान माल एक मात्र न्यायाधीशों के हाथ में चला जायगा और कहीं यदि न्याय संबंधिनी शक्ति को शासकों के ही हाथ में दे दिया जाय तब तो अत्याचार का होना आवश्यक ही है, क्योंकि जो किसी व्यक्ति पर अपराध लगानेवाला होगा वही उस व्यक्ति के अपराध का निर्णय करनेवाला भी होगा।'

किसीके हाथ में भी अत्यंत अधिक शक्ति का दे देना राष्ट्र के लिये भयानक होता है। यदि ऊपर लिखी तीनों शक्तियाँ पृथक् पृथक् व्यक्तियों तथा समुदायों के हाथ में दे दी जाँय तो इससे राष्ट्र में जहाँ किसीकी भी शक्ति अधिक नहीं होने पाती वहाँ कार्य भी समुचित रीति पर चलता है। एक ही व्यक्ति या समुदाय तीनों कार्यों को इस योग्यता से संपादन नहीं कर सकता जैसे कि वह केवल एक ही कार्य को कर सकता है। परमात्मा ने शरीर में आँखे देखने के लिये, कान सुनने के लिये तथा हाथ काम करने के लिये दिए हैं। जब परमात्मा ने शरीर के कार्य को उचित ढंग पर चलाने के लिये भिन्न भिन्न इंद्रियों को दिया है तब राष्ट्र रूपी शरीर के कार्य को भी अच्छी तरह से चलाने के लिये 'शक्ति-संविभाग' के सिद्धांत

का ही अवलंबन करना ठीक मालूम पड़ता है। *

शासक तथा न्याय संबंधिनी शक्ति का आधार वास्तव में एकमात्र नियामक शक्ति पर है। जैसे कि राज्यनियम होते हैं वैसा ही शासक शासन करते हैं तथा न्यायाधीश न्याय करते हैं। यही कारण है कि 'नियामक शक्ति' ही तीनों शक्तियों में मुख्य गिनी जाती है। संसार की संपूर्ण जातियों ने नियामक शक्ति को अपने ही हाथ में रखा है। नियामक शक्ति को अत्यंत सावधानी से प्रयुक्त करने के लिये सभी सभ्य जातियों ने कोई न कोई उपाय अवश्यमेव किया हुआ है। यहाँ पर यह आश्चर्य से हमें लिखना पड़ता है कि एक उपाय में प्रायः सभी सभ्य जातियों ने अनुपम समानता प्रकट की है। यह उपाय नियामक शक्ति को दो सभाओं में विभक्त करना है। राजनैतिक भाषा में यह उपाय 'सभाद्वय' विधि या शैली के नाम से लिखा जाता है। यूनान आदि कुछ एक छोटे छोटे राष्ट्रों को छोड़ कर सर्वत्र ही 'सभाद्वय' विधि का प्रचार है। अमेरिका, इंगलैंड, तथा अँग्रेजी उपनिवेशों में किस प्रकार से नियामक सभाएँ विद्यमान हैं यह किसीसे छिपा नहीं है। सब से विचित्र बात तो यह है कि अफ्रिका में नीग्रो लोगों का हेती (Haiti) नामी राष्ट्र भी इसी विधि पर काम कर रहा है।

नियामक शक्ति को दो सभाओं में विभक्त करने का एक लाभ तो यह है नियम-निर्माण में शीघ्रता नहीं होने

* See Bluntschli—The theory the State. Book VII, chap VII.

पाती। दूसरा लाभ यह भी कहा जा सकता है कि प्रस्तावों को विचारने के लिये समय पर्याप्त मिल जाता है। संसार की सभी राष्ट्रसभा या लार्डसभा में प्रायः संकुचित विचार के ही व्यक्ति सभ्य होते हैं। इसका शायद् यह कारण है कि द्वितीय सभा में प्रायः धनाढ्य, भूमिपति तथा अनुभवी जन ही सभ्य होते हैं जो कि बहुत सुधारों को पसंद नहीं करते। शासनपद्धति के निर्माणकाल में प्रायः इस बात का ध्यान रखा जाता है कि नियामक, शासक तथा न्याय संबंधी तीनों शक्तियाँ किसी एक के ही हाथ में नहीं होनी चाहिएँ। इंगलैंड में मुख्य न्यायाधीश शासकसमिति द्वारा चुना जाता है परंतु वही चुने जाने के अनंतर अपने चुननेवाले अधिकारियों के ऊपर अपना निर्णय दे सकता है। न्यायाधीश को पदच्युत करना इंगलैंड में नियामक सभा के हाथ में है। यह अतिशय उत्तम प्रबंध इंगलैंड में ही संभव है क्योंकि इंगलैंड को भयानक युद्धों की दिन रात चिंता नहीं करनी पड़ती है। युरोप की अन्य जातियाँ इस प्रकार न्यायाधीश की शक्ति को महत्व देने में असमर्थ हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें दिन रात अपने आपको शत्रु से बचाने की ही चिंता रहती है। युरोप की प्रायः सभी जातियों में 'शासक-न्यायसमिति' की विधि प्रचलित है। इस समिति का संबंध जहाँ विशेषतः शासकों से है वहाँ वह शासकों का शासक के ही रूप में निर्णय करती है। युरोप के देशों के शासक निर्भयता से अपना कार्य किया करते हैं, क्योंकि इन्हें इस बात का निश्चय होता है कि उनकी अपनी ही समिति

समय पर उनकी रक्षा करेगी । चूंकि अमेरिका की स्थिति भी इंगलैंड के ही सदृश है अतः वहाँ भी मुख्य न्यायालय की शक्ति अनंत है । अमेरिका का मुख्य न्यायालय शासनपद्धति के विरुद्ध, राजनियमों को ठहरा सकता है तथा उनको कार्य में लाने से रोक सकता है । जातीय सभा की किसी भी नियम-धारा से यदि कोई राज्यनियम टक्कर खाता हो तो मुख्य न्यायालय उसे राज्यनियम ही नहीं समझता है ।

इंगलैंड में मंत्रिसभा की उपसमिति के सभ्य नियामक सभा के सभ्य भी होते हैं तथा वह नियमनिर्माण में प्रभाव भी पर्याप्त डालते हैं । परंतु अमेरिका में यह नहीं है । अमेरिका की शासनपद्धति के निर्माता शासकों के हाथ में परिमित शक्ति ही रखना चाहते थे । इसीलिये उन्होंने अमेरिका के प्रधान तथा उसकी मंत्रिसभा को जातीय सभा में बैठने से रोक दिया है । प्रधान की शक्ति को जहाँ राष्ट्रसभा के द्वारा उन्होंने बहुत कुछ परिमित कर दिया है वहाँ उसकी प्रधानता का काल भी बहुत ही थोड़ा रखा है । इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि इंगलैंड तथा अमेरिका की शासनपद्धति एक दूसरी से सर्वथा भिन्न हैं । इसमें संदेह भी नहीं है कि दोनों ही देशों में नियम बनाते समय छोटी छोटी बातों तक का ध्यान रख लिया जाता है जिससे शासकों को जहाँ अपनी बुद्धि से बहुत काम नहीं लेना पड़ता वहाँ वे लोग स्वेच्छाचारी भी नहीं हो सकते । परंतु फ्रांस तथा इटली में यह बात नहीं है । वहां तो मोटे मोटे नियम बना दिए जाते हैं, छोटे छोटे मामलों पर तो शासकों को अपनी बुद्धि से ही काम

लेना पड़ता है इससे उनका कुछ कुछ स्वेच्छाचारी हो जाना स्वाभाविक ही है।

आजकल नियामक सभाओं के 'स्वापन्न तथा अस्वापन्न' दो भेद प्रायः किए जाते हैं। इंगलैंड की पार्लियामेंट (राजा + लार्डसभा + प्रतिनिधि सभा) स्वापन्न नियामक सभा का उदाहरण है, क्योंकि इसकी नियामक शक्ति किसी नियम द्वारा प्रतिबद्ध नहीं है। परंतु संसार के अन्य सभ्य देशों की नियामक सभाओं की यह दशा नहीं है। अंग्रेजी उपनिवेशों की नियामक सभाएँ अस्वापन्न कही जा सकती हैं, क्योंकि उनकी नियामक शक्ति इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा प्रतिबद्ध होती है। अमेरिका में भी नियामक सभा कुछ एक शासनपद्धति संबंधी नियमों की धाराओं के परिवर्तन करने में जनता की ओर से परतंत्र है। जनता ने मुख्य न्यायाधीशों को यह शक्ति दी हुई है कि वे यह बतावें कि अमुक अमुक राज्यनियम शासनपद्धति के विपरीत तो नहीं हैं। यदि विपरीत हों तो उनके स्वीकार करने में नियामक सभा स्वापन्न नहीं है। कई एक विद्वान् शासनपद्धति के संबंध में प्रायः 'शिथिल या अशिथिल' शब्द भी व्यवहृत करते हैं। आंग्ल शासनपद्धति शिथिल कही जाती है क्योंकि उसके द्वारा शासनपद्धति के आधारभूत नियमों को भी उसी शीघ्रता से परिवर्तन किया जा सकता है जैसे की तुच्छ तुच्छ नियमों को। परंतु अमेरिकन शासनपद्धति अशिथिल कही जाती है, क्योंकि वहाँ किसी प्रकार का शासनपद्धति संबंधी सुधार जातीय सभा के $\frac{2}{3}$ सभ्यों की स्वीकृति के बिना नहीं किया जा सकता है और जातीय समा में स्वीकृत हो जाने पर

भी जबतक $\frac{3}{4}$ राष्ट्र उस सुधार को न स्वीकार कर लें तब तक वह काम में नहीं लाया जा सकता। स्विट्जलैंड में शासन-पद्धति संबंधी सुधार के लिये बाधित जनसम्मति लेनी पड़ती है पर जर्मनी में कोई भी वैसा सुधार एकमात्र १४ विरोधी सम्मतियों से ही गिर सकता है।

आज कल प्रायः दो प्रकार के राष्ट्र पाए जाते हैं—(१) एकात्मक (Unitory),(२) राष्ट्रसंघटनात्मक (Federal)।

एकात्मक तथा राष्ट्रसंघटनात्मक प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य।

अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जलैंड राष्ट्रसंघटनात्मक राष्ट्रों के उदाहरण कहे जा सकते हैं और इंगलैंड एकात्मक राष्ट्रों का। अमेरिका में बहुत से स्वतंत्र राष्ट्र थे, वे सब मिल कर अमेरिका के राष्ट्रसंघटन में सम्मिलित हुए। इनमें उनकी वैय्यक्तिक सत्ता का लोप नहीं किया गया है पर साथ ही मुख्य राज्य (Central Government) के सम्मुख उनकी शक्ति भी बहुत ही अल्प है। जो कुछ उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त है वह केवल अपने ही राष्ट्र के लिये है। इंगलैंड में यह दशा नहीं है। इंगलैंड एक देश है, वह राष्ट्रसंघटन नहीं कहा जा सकता है, इसीलिये वह एकात्मक राष्ट्र कहा जाता है।

राष्ट्रसंघटन दो प्रकार का हुआ करता है। एक पूर्ण, दूसरा अपूर्ण। पूर्ण राष्ट्रसंघटन के परिज्ञान से अपूर्ण का भी परिज्ञान हो जायगा। अतः पूर्ण राष्ट्रसंघटन पर कुछ शब्द लिख देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

पूर्ण राष्ट्रसंघटन के तीन मुख्य मुख्य गुण होते हैं—

(१) राष्ट्रसंघटन के सब राष्ट्रों को राष्ट्रसभा में समान संख्या में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार हो।

(२) प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति परस्पर समान हो।

(३) नियामक तथा शासक सभाओं के अधिकार राष्ट्रों की सहमति के बिना बढ़ाए न जा सकें।

अमेरिका का राष्ट्रसंघटन पूर्ण समझा जाता है पर जर्मनी का अपूर्ण। राष्ट्रसंघटन के लक्षण पर ही आजकल बड़ा भारी वाद विवाद है। महाशय फ्रीमैन की सम्मति में तो छोटे बड़े राष्ट्रों के सम्मेलन को राष्ट्रसंघटन कहा जा सकता है परंतु आजकल यह नहीं माना जाता। सीले महाशय तो 'राष्ट्रसंघटन' से ऐसे दो राज्यों का परस्पर मेल समझते हैं जिनमें एक स्थानीय राज्य (Local Government) का पक्ष लेता है और दूसरा मुख्य राज्य (Central Government) का। परंतु यह भी लक्षण स्वीकृत नहीं किया जा सकता है; क्योंकि इसके अनुसार दारा तथा जर्क्सिज के राज्य भी राष्ट्रसंघटन के उदाहरण कहे जा सकते हैं। जो कुछ भी हो राष्ट्रसंघटन से हमारा तात्पर्य ऐसे राष्ट्रों के परस्पर संयोग से है जो कि राज्यनियम द्वारा समान अधिकार रखते हों तथा अपनी अपनी शक्ति तथा आवृत्ति में सर्वथा असमान हों। परंतु इस लक्षण के अनुसार राष्ट्रसंघटन का होना तभी संभव है जब कि राष्ट्र स्वयँ ही अपने हितों की तथा स्वार्थों की एकता के कारण परस्पर मिले हों। राष्ट्रसंघटन की राजसभा में राष्ट्रीय सभ्यों को अपने अपने राष्ट्रों की सम्मति को देना ही उचित प्रतीत होता है, जैसा कि जर्मनी में है भी। अमेरिका तथा

स्विट्जलैंड में यह बात नहीं है। राष्ट्रसभा के सभ्य प्रायः वहाँ अपनी ही सम्मति दिया करते हैं। ❀

प्रजासत्तात्मक राज्य के सिद्धांतों के अधिक समीप तक यदि किसी देश की शासनपद्धति है तो वह स्विट्जलैंड की है। स्विट्जलैंड को आज कल के युग में

आदर्श राज्य। "आदर्श राज्य" के नाम से लिखा जाता है। यह क्यों? यह इसी लिये कि स्विट्जलैंड जहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की शैली पर चल रहा है वहाँ 'जन-सम्मति-विधि' से प्रजासत्तात्मक राज्य की शैली के ऊपर भी चलता हुआ कहा जा सकता है। एथेंस में यद्यपि प्रजासत्तात्मक राज्य था परंतु वह उसको सफलता से न चला सका। स्विस् जनता का स्वभाव, आचार व्यवहार इतना उच्च है कि उसको असफलता का कभी सामना ही न करना पड़ा। इंगलैंड के सदृश ही स्विस्-शासनपद्धति का विकास भी आत्मिक नहीं है। चिर काल से स्विस् जनता स्वतंत्रता का पान कर रही है। विचित्रता यह है कि जन-सम्मति-विधि की योग्यभूमि सारे संसार में एक स्विट्जलैंड ने ही अपने आपको सिद्ध किया है और यही कारण है कि स्विट्जलैंड की शासनपद्धति पर लिखते हुए इस पुस्तक में जन-सम्मति-विधि पर बहुत से पृष्ठ लिखे गए हैं जिन्हें पाठकों को अत्यंत ध्यान से पढ़ना चाहिए।

---

* See Alston—Modern Constitutions. Chap. II. III.

आजकल प्रायः भारतीय जनता के बहुत से सभ्यों के मुख से यह सुनाई दिया करता है कि आंग्ल शासन-पद्धति में से शायद् लार्डसभा का सर्वथा ही

आंग्ल लार्डसभा।

समुच्छेद कर दिया जाय। क्या होगा यह तो कोई भी नहीं कह सकता है। परंतु इतना अवश्यमेव कहा जा सकता है कि ऐसा करने से इंगलैंड को बड़ी भारी हानि पहुँचने की संभावना है। लार्डसभा का समुच्छेद न करना चाहिए। उसमें सुधार करना अत्यंत आवश्यक है। लेखक ने इस पुस्तक में इंगलैंड की लार्डसभा पर भी बहुत से पृष्ठ दिए हैं, यह केवल इसी लिये कि जनता को यह सूचित किया जाय कि किस प्रकार इंगलैंड में लार्डसभा तथा प्रतिनिधिसभा अपनी शक्ति को खो बैठी हैं तथा किस प्रकार वहाँ मंत्रिसभा की असीम शक्ति तथा प्रधानता बढ़ गई है, जो कि किसी जाति की उन्नति तथा स्वतंत्रता के लिये सर्वथा अभीष्ट नहीं कही जा सकती।

इस पुस्तक में अंग्रेजी के शब्दों के स्थान पर सर्वथा संस्कृत के शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। पाठकों की स्पष्टता के लिये अंग्रेजी शब्दों की सूची अंत में

शब्द निर्माण।

दे दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। जिन जिन अंग्रेजी शब्दों के स्थान पर संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया गया है उन संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते समय लेखक ने अंग्रेजी शब्दों के अनुवाद के स्थान पर भाव को ही लेकर संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है। दृष्टांत के तौर पर

Initiative शब्द ही लीजिए। इसके स्थान पर 'निर्देश' शब्द न प्रयुक्त कर के 'नियामक जन-सम्मति' इस शब्द का प्रयोग किया है ? यह क्यों ? यह इसीलिये कि इनीशियेटिव शब्द का प्रयोग "नियमनिर्माण में जनता की जो सम्मतियाँ ली जाती हैं" उसीके लिये राजनैतिक भाषा में रूढ़ि है। अंग्रेजी रूढ़ि शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों के 'भाव' को ही मुख्य रखना पड़ता है न कि शब्दार्थ को।



दूसरा परिच्छेद ।

फ्रांस ।

१८७० में फ्रांस और जर्मनी में परस्पर घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में फ्रांस बहुत ही बुरी तरह पराजित हुआ। नेपोलियन तृतीय अपनी संपूर्ण सेना के साथ जर्मनी के हाथ में कैद हो गया। ज्यों ही यह हृदयविदारक घटना फ्रांस में पहुँची वहां बड़ा भारी विक्षोभ उत्पन्न हुआ। संपूर्ण जनता ने उसी समय सोच लिया कि आगे से अब एक राजा देश में परिमित शक्तियुक्त राज्य नहीं रख सकता। देश का शासन प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यप्रणाली द्वारा ही होना उचित है। फ्रांस में इस शासनपद्धति का अवलंबन विपत्काल में हुआ—यही कारण है कि बहुत से लिखित नियम वहाँ शासनपद्धति में वर्तमान नहीं है। जब तक यह युद्ध चलता रहा तब तक तो साम्राज्य का शासन जातिसंरक्षण सभा ही करती रही, परंतु ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ, सारे राज्य के प्रतिनिधियों को बुला कर एक नई जातीय सभा का निर्माण हुआ जिसके हाथ में संपूर्ण साम्राज्य की बागडोर दे दी गई।

फ्रांस में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की उत्पत्ति।

यहाँ पर यह नहीं भूलना चाहिए कि ऊपर लिखे सभी कार्य शीघ्रता में किए गए हैं। इस दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, यदि जातीय सभा के

अधिकारों का समुचित लेखा विद्यमान न हो। १८७१ में प्रसिद्ध लूइस फिलिप के मंत्री दीपर्स नामी महाशय इस सभा के सब से पहले प्रधान चुने गए। कितने वर्ष तक उनकी प्रधानता रहे यह निश्चित नहीं किया गया। दीपर्स ने संपूर्ण शासन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया, साथ ही उसने यह प्रण भी किया कि वह समय समय पर अपने कार्यों की सूचना जातीय सभा के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित करता रहेगा। दो वर्ष तक यह कार्य चलाता रहा पर जातीय सभा में परस्पर इतने विभिन्न दल थे कि कुछ एक विरोधी सम्मतियों के कारण दीपर्स ने कार्य छोड़ दिया। मार्शल मैकूमाहन प्रधान चुने गए। यह व्यक्ति जातीय सभा का सभ्य न था, अतः इसका मंत्रिमंडल भी जातीय सभा के प्रत्येक कार्य का उत्तरदाता नहीं हुआ। इस समय तक फ्रांस का शासन चलता रहा परंतु उस शासन को एक विशेष प्रकार का रूप देने के लिये उस समय कोई विशेष नियम नहीं बनाए गए थे। सब से विचित्र बात यह थी कि जातीय सभा में राजा के पक्षपातियों की अधिकता थी जो कि एकराज्यात्मक राज्य के ही पक्षपाती थे। वे स्वयं भी ऐसे दो दलों में विभक्त थे जिनका मिलना असंभव था। एक दल काम्ट डि चैंबोर्ड का पक्षपाती था, दूसरा काम्ट डि पैरिस का था। काम्ट डि चैंबोर्ड से उसके पक्षपातियों ने कुछ शर्तों को स्वीकार करने की प्रार्थना की, परंतु उसने न माना। परिणाम यह हुआ कि वह फ्रांस का राजा न बन सका। साथ ही इस घटना से राजपक्षपातियों को

यह पता लग गया कि इस अवसर पर फ्रांस में राजा का राज्य पुनः ले आना कठिन है। इसलिये वे लोग प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य के पक्षपातियों से मिल कर किसी एक शासन प्रणाली के निर्माण में प्रवृत्त हुए। फ्रांस की शासनप्रणाली प्राचीन तथा नवीन विचारों का मेल कही जा सकती है। नवीन विचारों के अनुसार फरासीसी शासनप्रणाली का नाम है तथा उसके मुख्य शासक का चुनाव होता है और प्राचीन विचारों के अनुसार सभा के प्रधान या मुख्य शासक का राज्यकार्य में जातीय सभा के सम्मुख अनुत्तरदातृत्व है। नवीन तथा प्राचीन विचारों के अनुसार किसी एक प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासनप्रणाली का निर्माण कठिन है, जब कि देश में ऐसे प्रतिनिधियों की संख्या अधिक हो जो इस शासनप्रणाली के विरोधी हों और जो इसके निर्माण में इसलिये प्रवृत्त हों कि देश की दशा ऐसी नहीं है जिससे उनके वास्तविक विचार कार्य में परिणत हो सकते हैं, साथ ही जो उस समय की प्रतीक्षा में हों जब कि वे प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य प्रणाली को हटा कर राजात्मक राज्य को देश में ले आवें। इस दशा में फ्रांस में प्रतिनिधिसत्तात्मक शासनप्रणाली के नियमों का निर्माण न होना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शासनपूणाली संवंधी अभी तक तीन ही नियम क्यों पास हुए हैं जो कि स्वयं ही संक्षिप्त हैं। सारांश यह है कि १८७५ की २४ या २५ फरवरी तथा १६ जुलाई के राजनियमों द्वारा प्रधान, प्रतिनिधि द्वारा अतरंग सभा तथा मंत्रिसभा का निर्माण निश्चित हो गया तथा उनका आपस में कितना

संबंध है, एक दूसरे की शासन तथा नियमनिर्माण में कितनी शक्ति है, शासन में किस सभा का उत्तरदातृत्व जातीय सभा के सम्मुख है इत्यादि इत्यादि बातों का निर्णय संक्षेप से कर दिया गया। समय समय पर १८७५ की नियम-धाराओं का परिवर्तन भी किया गया है और यह परिवर्तन तभी होता है जब कि प्रतिनिधि सभा तथा अंतरंग सभा एक जातीय सभा के रूप में परस्पर मिल कर बैठती है ।

१८८१ की २१ जून को जातीय सभा में वार्सेल्स से फ्रांस की राजधानी हटा कर पैरिस में लाई गई । १८८४ की १४ अगस्त को अंतरंग सभा के सभ्यों के चुनाव की विधियों का संशोधन किया गया। साथ ही फ्रांस की प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यप्रणाली को सुरक्षित करने के लिये यह नियम पास किया गया कि भविष्यत् में फ्रांस की शासनप्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा। यह भी इस लिये पास किया गया कि इस बात का फरासीसी साम्राज्य की जनता को भय था कि शासनप्रणाली में सुधार करते करते कहीं उसे ऐसा रूप ही न मिल जाय जिससे वहाँ एक राजा का राज्य पुनः स्थापित हो जाय । परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि यद्यपि शासनप्रणाली के सुधार का अधिकार अंतरंग सभा तथा प्रतिनिधि सभा से पृथक् पृथक् छीन लिया गया, परंतु वे ही जातीय सभा के रूप में बैठ कर शासनप्रणाली में जो चाहें सुधार कर सकती हैं। सारांश यह है कि जाति यदि शासनप्रणाली को भी बदलने

पर उतारू हो जाय तो उसे रोकनेवाला कौन हो सकता है ? फिर यदि दोनों सभाएँ ही पृथक पृथक् तौर पर नियमों में ऐसे परिवर्तन कर देवें जिनका प्रभाव शासनप्रणाली पर पड़ता हो तो उन्हें इस कार्य से कौन रोक सकता है ? फरासीसी न्याय-सभा का इस कार्य में हाथ नहीं है कि वह शासनप्रणाली संबंधी नियमों को उचित या अनुचिन ठहरावे तथा उन्हें देश में प्रचलित होने देवे वा न होने देवे। जो कुछ भी हो, यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि देश की शासनप्रणाली की स्थिरता या अस्थिरता में जातीय आचार का बड़ा भाग होता है। दोनों ही फरासीसी राष्ट्रसभाएँ फरासीसी जनता से बहुत भय करती हैं, अतः वे राज्यप्रणाली में कोई भी बड़ा परिवर्तन करने में अशक्त हैं। फ्रांस की अंतरंग सभा में लोग संकुचित विचार के हैं, उन्हें अधिक परिवर्तन पसंद नहीं है। अतः वे प्रतिनिधि सभा के साथ मिल कर जाति सभा के रूप में बैठना ही नहीं चाहते। इस प्रकार फ्रांस में मुख्य न्यायसभा का कार्य, अंतरंग सभा के सभ्यों का संकुचित विचार तथा दोनों ही सभाओं को जनता का भय बना रहता है। अतः वहाँ शासनप्रणाली में कोई बड़ा परिवर्तन हो जाना सहज नहीं है।

फ्रांस की शासन प्रणाली के पंच अंग हैं—

(१) प्रतिनिधि सभा। (२) अंतरंग सभा।
(३) जातीय सभा। (४) प्रधान।
(५) मंत्रि-सभा।

अब हम आगे चल कर एक एक पर पृथक् पृथक् विचार प्रारंभ करेंगे।

प्रतिनिधि-सभा.
The Chamber of Deputies.

फरासीसी प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव संपूर्ण फरासीसी साम्राज्य से किया जाता है। २१ वर्ष की आयु से अधिक की आयु वाले प्रत्येक व्यक्ति को चुनने का अधिकार है। परंतु चुने जाने के लिये २५ वर्ष की आयु का होना अत्यंत आवश्यक है। फ्रांस में जहाँ राज्यापराधियों, दिवालियों, नौ सेना तथा स्थल सेना के कर्मचारियों, फ्रांस के प्राचीन राजवंश के व्यक्तियों, राज्य से भृत्ति लेनेवाले कुछ एक पदाधिकारियों (मंत्री तथा उपमंत्री) को छोड़ कर अन्य किसी भी राज्यकर्मचारी का प्रतिनिधि सभा का सभ्य चुना जाना प्रतिषिद्ध है। यदि कोई राज्यकर्मचारी अपने आप को सभ्य चुनवा कर प्रतिनिधि सभा में आवेगा तो वह पदच्युत कर दिया जायगा। प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव पंचवर्षीय होता है। इनकी संख्या वर्तमान काल में ५७६ है। इनमें से १० सभ्य उपनिवेशों के तथा ६ सभ्य अल्जीयर्स के होते हैं। शेष सब के सब सभ्य फ्रांस के ही होते हैं। फ्रांस में प्रतिनिधि सभा में कई बार बहुत ही अशांति हो जाती है। प्रधान के लिये भी इस अशांति को दूर करना कोई सहज काम नहीं है। इस अशांति का कारण यह है कि जहाँ कई एक सभ्य अपेक्षा से अधिक समय तक बोलते रहते हैं वहाँ सभ्य लोग आपस में भी इतनी बातें करने लगते हैं जो

एक कोलाहल का रूप धारण कर लेती है। यद्यपि प्रधान नियम-भंग करने के कारण सभ्य को दंड दे सकता है तथापि वह इस कार्य में इस साधन का प्रयोग प्रायः नहीं करता। यहाँ पर यह लिखना आवश्यक प्रतीत होता है कि शांति करने के लिये प्रधान जब सब साधनों को आज़मा चुकता है तब वह टोपी अपने सिर पर रख कर बैठ जाता है। इस पर जब कोलाहल बंद न हो तो वह एक घंटे के लिये अधिवेशन बंद कर देता है।

अंतरंग सभा। Senate.

इस सभा के सभ्यों की संख्या ३०० है। इनमें से २२५ भिन्न भिन्न राजकीय विभागों तथा उपनिवेशों द्वारा ९ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। इनकी एक तिहाई संख्या हर तीसरे साल चुनी जाती है। शेष ७५ सभ्य जीवन भर के लिये चुने जाते हैं। आदि में यह नियम था कि यदि कोई स्थायी सेवक मर जाय तो अंतरंग सभा के सभ्य स्वयं ही उस मृत पुरुष के स्थान पर किसी व्यक्ति को स्थायी सेवक के तौर पर चुन लेते थे। पर १८९४ की ९ दिसंबर को यह नियम बदल दिया गया तथा मृत स्थायी सेवक के स्थान पर नए स्थायी सेवक का चुनाव जाति के भिन्न भिन्न राजकीय विभागों के हाथ में दे दिया गया। अंतरंग सभा के सभ्यों का चुनाव राजकीय विभागों द्वारा होता है। फ्रांस में व्यक्तियों के संख्यानुसार ऐसे संघ बनाए गए हैं जिनको कि इस चुनाव में बड़ा भारी भाग दिया गया है। वे स्वयं अपने अपने सभ्य पृथक् पृथक्

चुन कर भेजते हैं। अंतरंग सभा के सभ्य के लिये चालीस वर्ष से अधिक का वृद्ध होना आवश्यक है। आय-व्यय का बजट प्रतिनिधि सभा में तैय्यार होता है पर अंतरंग सभा में उसका स्वीकृत होना आवश्यक है। अंतरंग सभा कर आदि बजट में कम कर सकती है पर बढ़ा भी सकती है या नहीं यह विषय अब तक विवादास्पद रहा है।

अंतरंग सभा की स्वीकृति से प्रधान प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर नए सिरे से चुनाव के लिये प्रेरित कर सकता है। यही अंतरंग सभा कई बार न्यायसभा का रूप धारण कर लेती है जब कि प्रधान मंत्रीविभाग की सम्मति लेवे तथा जाति की रक्षा के लिये किसी व्यक्ति पर अभियोग चलाने के लिये ऐसा करना उचित समझे। यहाँ पर यह अच्छी तरह स्मरण कर लेना चाहिए कि अंतरंग सभा का मंत्रिसभा पर कोई विशेष अधिकार नहीं है। अंतरंग सभा की सामर्थ्य में यह नहीं है कि वह मंत्रिसभा को अपनी सम्मति के न मानने पर च्युत कर सके। इसका परिणाम यह है कि देश की राजनीति की बागडोर मंत्रि-सभा के हस्तगत हो गई और अंतरंग सभा को उस राजनीति के अदलने बदलने का अधिकार नहीं है।

फ्रांस की अंतरंग सभा की शक्ति इंगलैंड की लार्डसभा की शक्ति से कुछ ही अधिक समझनी चाहिए। एक समय ऐसा भी था जब कि फरासीसी जनता इसको घृणा की दृष्टि से देखती थी। यह हम पहले लिख चुके हैं कि अंतरंग सभा का निर्माण जातीय सभा द्वारा हुआ था, जिसमें राजात्मक

राज्य के पक्षपातियों की संख्या अधिक थी। जो कुछ भी हो। महाशय वालंगर के ऊपर अभियोग चलाने से इसका मान बहुत कुछ फरासीसी जनता में अब बढ़ गया है और वह इसे अब प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य का पक्षपाती समझने भी लग पड़ी है। इतना होने पर भी अब भी फ्रांस में ऐसे व्यक्तियों की कुछ कमी नहीं है जो इसके मूलोच्छेदन को ही पसंद करते हैं। अंतरंग सभा के भावी में कम अधिकार होंगे और इसकी क्या अवस्था होगी यह अभी नहीं कहा जा सकता। कई एक की तो यह सम्मति है कि इसमें से जब कुछ एक पुराने प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोकमान्य व्यक्ति, जो कि अब स्थायी सेवक हैं, मर जाँयगे तब इसका प्रभाव बिलकुल ही उड़ जायगा। परंतु उनका यह कथन ठीक प्रतीत नहीं होता क्योंकि देश के योग्य व्यक्ति अब भी उसमें चुन कर आते जाते हैं तथा इसके सभ्य हैं। साथ ही अब यह प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की विरोधिनी सभा नहीं है। इस समय इसका सर्वथा शक्तिहीन हो जाना कुछ संभव तो प्रतीत नहीं होता है। सत्य तो यह है कि इसके भाग्य का अभी से निर्णय करना कुछ कठिन ही है।

जातीय सभा। The National Assembly.

जब प्रतिनिधि सभा तथा अंतरंग सभा इकट्ठी बैठें तो उसको जातीय सभा के नाम से बुलाया जाता है। इसके अधिकार भी उन दोनों की अपेक्षा भिन्न हैं। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि यह एकमात्र जातीय सभा के ही हाथ म है कि वह शासनप्रणाली में जो परिवर्तन

चाहे करे। जाति के प्रबंध के लिये ७ वर्ष के लिये प्रधान को भी यही चुनती है। यहाँ पर यह भी न भूलना चाहिए कि फ्रांस में पहला प्रधान दूसरी बार पुनः चुना जा सकता है, पर प्राचीन राजवंश के किसी भी व्यक्ति को यह पद नहीं दिया जा सकता। यह नियम भी इस लिये रखा हुआ है कि कहीं कोई राजवंश का व्यक्ति प्रधान के पद को ग्रहण करके तथा इस पद का दुरुपयोग करके एक राजा का राज्य लाने का पुनः यत्न न कर सके।

फरासीसी साम्राज्य में प्रधान के भिन्न भिन्न अनेक कर्तव्य हैं। साम्राज्य में प्रधान मुख्य शासक और साम्राज्य में नियमों का परिचालक समझा जाता है। साथ ही साम्राज्य का निरीक्षक, तथा भिन्न भिन्न पदों पर योग्य व्यक्तियों का नियतकर्ता भी यही होता है। अंतरंग सभा की अनुमति ले कर यह प्रतिनिधि सभा को च्युत भी कर सकता है और उसे फिर नए सिरे से चुनवा भी सकता है। प्रधान मैक्माहन ने एक बार इस कार्य में यत्न किया था परंतु असफल हुआ। मैक्माहन के अनंतर किसी भी फ्रेंच प्रधान ने यह कार्य नहीं किया और न इस कार्य के लिये यत्न ही किया। प्रधान, व्यापार तथा शांति संबंधी संधि और युद्ध की घोषणा नहीं कर सकता है जब तक कि वह दोनों सभाओं की स्वीकृति न ले लेवे। अमेरिका के प्रधान की तरह फ्रांस का प्रधान भी बहुत प्रकार के नियमों से जकड़ा हुआ है। अपनी इच्छाओं के पूर्ण करने में दोनों ही

प्रधान। President.

प्रधान स्वतंत्र नहीं हैं। प्रत्येक प्रकार की आज्ञा को साम्राज्य में प्रचलित करने के लिये फ्रांस के प्रधान को भिन्न भिन्न विभागों के किसी न किसी मंत्री के हस्ताक्षर आज्ञापत्र पर कराने पड़ते हैं। इस प्रकार इंगलैंड के राजा की तरह वह साम्राज्य के किसी भी बुरे भले कार्य का एकमात्र उत्तरदाता नहीं है। प्रतिनिधि सभा के सम्मुख राजकीय नियमों तथा कार्यों का उत्तारदाता मंत्रिविभाग ही है। मंत्रिसभा की प्रत्येक बैठक में प्रधान नहीं जाता है। कभी कोई आवश्यक प्रश्न मंत्रिसभा के सम्मुख हो तो प्रधान उस सभा में जा कर प्रधान का पद ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार शासनप्रणाली तथा नीति के अदलने और बदलने में फ्रेंच प्रधान का बहुत बड़ा हाथ नहीं है। यद्यपि मंत्रियों का चुनाव एकमात्र प्रधान के ही हाथ में है परंतु प्रधान प्रायः प्रतिनिधि सभा के विजयी-दल के किसी एक मुख्य व्यक्ति को ही यह कार्य सौंप देता है। वह जिन जिन व्यक्तियों को निर्देश करता है वे ही मंत्री के तौर पर चुन लिए जाते हैं। मंत्रिविभाग के चुनाव में प्रधान को क्या क्या कष्ट उठाना पड़ता है वह हम आगे चल कर लिखेंगे, यहाँ पर इतना लिखना ही पर्याप्त होगा कि प्रायः प्रधान को कठिनता इसी बात में पड़ जाती है कि मंत्रिविभाग के चुनाव से महान् कार्य को वह किस व्यक्ति के हाथ में देवे। फ्रांस के प्रधान की शान ही शान है। अधिकार तो उसके बहुत ही परिमित हैं। सर हैनरी मैन ने फ्रांस के प्रधान के विषय में बहुत ही ठीक कहा है कि—"फ्रांस के प्राचीन राजा तो देश पर

जहाँ शासन करते थे वहाँ देश पर राज्य भी वे ही करते थे। इंगलैंड के राजा अंग्रेजी साम्राज्य पर राज्य तो करते हैं परंतु साम्राज्य का शासन उनके हाथ में नहीं है। वह तो अंग्रेजी पूजा के ही हाथ में है। अमेरिका का प्रधान तो अमेरिका पर शासन करता हुआ कहा जा सकता है परंतु साथ ही राज्य करता हुआ भी कहा जा सकता है। सारे संसार में केवल फ्रांस का ही प्रधान ऐसा है जिसको न शासन करता हुआ और न राज्य करता हुआ कह सकते हैं।"

मंत्रि-सभा। Ministery.

फ्रांस की शासनपद्धति में मंत्रिसभा ही बहुत कुछ शक्तिशालिनी कही जा सकती है। मंत्रिसभा ही साम्राज्य के शासन संबंधी भिन्न भिन्न विभागों का प्रबंध करती है तथा दोनों जातीय सभाओं के सामने अपनी नीति को तथा अपने कार्यों को इसे उचित भी ठहराना पड़ता है।

कई देशों में मंत्रियों को नियत ही इस लिये किया जाता है कि वे शासन का तो विशेष तौर पर कार्य न करें परंतु प्रतिनिधि सभा या लोक सभा में विरोधी दल के आक्षेपों का उत्तर दिया करें। यद्यपि फ्रांस में इस प्रकार के कार्य से मंत्रियों को रोकनेवाला कोई नियम नहीं है, तथापि वहाँ इस प्रकार की अवस्था विद्यमान नहीं है। फ्रांस में मंत्री अपने अपने विभाग के मुख्य शासक का काम करते हैं। विभागों तथा मंत्रियों की संख्या राजनियम द्वारा निश्चित नहीं हैं। यही कारण है कि वहाँ मंत्रियों की संख्या समय

समय पर कार्य के अनुसार बदलती रहती है। आज कल फ्रांस में ११ विभाग हैं तथा उनके ११ ही मंत्री हैं जो कि इस प्रकार हैं—

Department of	विभाग	मंत्री।
(१) The Interior and Religion.	१. अंतरीय तथा धर्म विभाग	१. अंतरीय तथा धर्म सचिव
(२) Justice.	२. न्याय विभाग	२. न्याय सचिव
(३) Finance.	३. आयव्यय विभाग	३. आयव्यय सचिव
(४) War.	४. युद्ध विभाग	४. युद्ध सचिव
(५) Navy.	५. नौसेना विभाग	५. नौसेना सचिव
(६) Education and the Fine-Arts.	६. शिक्षा तथा कला-कौशल विभाग	६. शिक्षा तथा कला-कौशल सचिव
(७) Public-Works	७. राष्ट्रीय कार्य विभाग	७. राष्ट्रीय कार्य सचिव
(८) Commerce and Industry.	८. व्यापार व्यव-साय विभाग	८. व्यापार व्यव-साय सचिव
(९) Colonies.	९. उपनिवेश विभाग	९. उपनिवेश सचिव
(१०) Posts and Telagraphs.	१०. पोस्ट तथा तार विभाग	१०. पोस्ट तथा तार सचिव
(११) Agricul-ture.	११. कृषि विभाग	११. कृषि सचिव

१८७५ की २५ फरवरी के नियम के अनुसार संपूर्ण मंत्रिसभा राजनीति के लिये दोनों जातीय सभाओं की

उत्तरदायिनी है, साथ ही प्रत्येक मंत्री पृथक् पृथक् अपने अपने कार्यों के लिये भी उत्तरदायी है। यह नियम इस लिये पास किया गया था कि इंगलैंड की तरह फ्रांस में भी बहुत कुछ लोक-सभा की रीति प्रचलित हो जाय। जिस प्रकार इंगलैंड में मंत्रि-सभा लोक सभा के आगे, उसी प्रकार आजकल फ्रांस की मंत्रिसभा प्रतिनिधि सभा के आगे उत्तरदायिनी है। प्रतिनिधि सभा किसी भी आवश्यक प्रश्न पर किसी मंत्री के प्रति विरुद्ध सम्मति दे दे तो उसे त्यागपत्र दे देना पड़ता है। साथ ही यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि फ्रांस में मंत्रिसभा के सभ्यों को यह अधिकार है कि चाहे वे जातीय दोनों सभाओं के सभ्य हों वा न हों, पर वे वहाँ जा सकते हैं और बोल सकते हैं।

फ्रांस में मंत्रिविभाग के हाथ में बहुत शक्ति दे दी गई है, यह वहाँ की अवस्था जानने से ही स्पष्ट हो सकता है। फ्रांस की प्रजा में पुनः आक्रांति न हो जाय इस बात का भय राज्य को बना रहता है। इस लिये वहाँ इस बात का यत्न किया गया है कि किसी प्रकार से राज्याधिकारी ही प्रजा के नेता का रूप धारण कर लें और यह तब तक हो ही नहीं सकता था जब तक कि राज्य में कई एक व्यक्तियों के हाथ में पर्याप्त शक्ति न दे दी जाती। यही कारण है कि मंत्रियों के हाथ में पर्याप्त शक्ति है। एक कारण यह भी कहा जा सकता है कि प्रजा के कार्यों में राज्य को हस्तक्षेप न करना चाहिए। इसमाईल, एदम स्मिथ आदि अंग्रेज संपत्ति-शास्त्रज्ञों के सिद्धांत के विरुद्ध प्रायः समस्त देश कार्य करने

लगे हैं, इस दशा में फ्रांस संसार से कैसे अलग रह सकता था।

फ्रांस में राज्य की शक्ति बहुत बढ़ी हुई कही जा सकती है। वहाँ प्रजा के प्रत्येक कार्य का निरीक्षक राज्य है। व्यापारियों तथा व्यवसायियों को अपने कार्य के लिये राज्य से प्रमाणपत्र लेना पड़ता है पर उन पर अधिकारी लोग शासन बहुत ही स्वतंत्रता से करते हैं। अब कुछ समय से वहाँ प्रेस तथा सभाओं को स्वतंत्रता मिली है। परंतु उनका भी अभी तक राज्य-नियमों से पूरी तरह छुटकारा नहीं हुआ है। बैंक की कंपनियों को छोड़ कर अन्य किसी-को भी राज्याज्ञा के बिना २० मनुष्यों से अधिक मनुष्यों की सभा बनाने का अधिकार नहीं है। जो कुछ भी हो। इन सब घटनाओं से यह स्पष्ट है कि फ्रांस में मंत्रिविभाग की कितनी शक्ति है और वह है भी क्यों? अब हम फ्रांस के शासन में भाग लेनेवाले भिन्न भिन्न दलों तथा पार्टियों का इतिहास लिखेंगे।

शासनप्रणाली के भिन्न भिन्न दल।

फ्रांस में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का अवलंबन विपत्काल में हुआ है यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं। यही कारण है कि फ्रांस में अंग्रेजी लोकसभा की रीति सफलता से न चल सकी। जर्मनी के साथ जब कि युद्ध में फ्रांस हार गया तथा उसका राजा तृतीय नेपोलियन जर्मनी के हाथ में कैद हो गया, उसी समय प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य का विचार

फरासीसी जनता के सम्मुख पुनः जागृत हो उठा। विपद्ग्रस्त साम्राज्य के प्रबंध के लिये जो जातीय सभा बनाई गई थी उसमें राजात्मक राज्य चाहनेवालों की संख्या अधिक थी (इन्हें हम आगे से राजदल के नाम से ही कहेंगे) परंतु देश की अवस्था इस समय इस प्रकार की थी कि राजात्मक राज्य का लाना असंभव था। अतः राजदलवाले इस बात के लिये बाधित थे कि वे फ्रांस के शासन के लिये प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्यप्रणाली का अवलंबन करते। जातीय सभा में फ्रांस के लिये प्रतिनिधि राज्य को ही सदा चाहनेवालों की संख्या भी पर्याप्त थी। परंतु वे राजदलवालों से संख्या में कम थे और वे स्वतः तीन दलों में विभक्त थे (इन्हें आगे से 'प्रतिनिधि राजदल' का नाम दिया गया है)। स्वतंत्र विचार की सीमा निश्चित नहीं की जा सकती है। जिसको हम स्वतंत्र विचार या उदार विचार का कह सकते हैं संभव है कि औरों की सम्मति में वह भी संकुचित विचार का हो। इस अवस्था में शासन-प्रणाली के भिन्न भिन्न दलों के सिद्धांतों का दे देना अतीव कठिन है, क्योंकि एक तो सिद्धांतों में प्रति दिन परिवर्तन होते रहते हैं और दूसरे भिन्न भिन्न दलवालों के सिद्धांतों का दे देना भी अतीव कठिन ही है। जो कुछ भी यहाँ किया जा सकता है वह केवल यही है कि यहाँ पर अत्यंत उदार विचारवालों से लेकर अत्यंत संकुचित विचारवालों की क्रमशः श्रेणियाँ बना देवें जिससे अगली सारी बातें समझने में सुगमता हो।

प्रतिनिधि-राज्य पक्षपाती	वामीय Left	१ सीमांत उदार- Socialists	समष्टिवादी ... Socialists	-सीमांत वार्दीय. Entreme Left
		२ अतिउदार... Opportu-nists	-अवसरवादी... Opportunists	-अति वामीय. ....
		३ उदार...... Radicals	-रेडिकल्स..... Radicals	-वामीय Left
		४ मध्यमउदार- Republicans of Government	प्रतिनिधिराज्यवादी. Republicans of Government	-मध्य वामीय Left-Centre
राजात्मक राज्यपक्ष-पाती Monarchists & Bonapartists	दक्षिणीय Right	५ मध्यम संकुचित...	राजा राज्यवादी...	... ... मध्यम दक्षिणीय
		६ संकुचित		-दक्षिणीय Right
		७ अति संकुचित...		... ... अति दक्षिणीय
		८ सीमांत संकुचित...		... ... सीमांत दक्षिणीय Extreme Right *

---

* युरोपीय राजनैतिक दशा से अपरिचित जनों के लिये यह नितांत आवश्यक प्रतीत होता है कि दक्षिणीय तथा वामीय (Right and left) शब्दों की विस्तृत व्याख्या कर दी जाय। इंगलैंड में प्रतिनिधि सभा भवन के अंदर 'प्रवक्ता' (Speaker) के दक्षिण हाथ की ओर मंत्रिसभा बैठा करती है। उसके पक्ष-पाती उसके पीछे तथा उसके पार्श्व में बैठा करते हैं। विरोधी दल प्रवक्ता

अभी हम लिख चुके हैं कि प्रतिनिधि राज्यदल (वामीय) वालों में भी परस्पर विभिन्न तीन दल थे जिनका निर्देश हम यहाँ पर वामीय, अतिवामीय और मध्यवामीय के तौर पर कर देना ही उचित समझते हैं। आरंभ में दक्षि-

---

के वाम हाथ की ओर बैठा करता है। परंतु युरोपीय महाद्वीप में इससे कुछ भिन्न ही प्रबंध है। वहाँ तो नाट्यशाल की तरह संपूर्ण कार्यक्रम है। मंत्रिमंडल जहाँ प्रधान के सम्मुख बैठता है वहाँ संकुचित विचार के लोग उसके दाक्षिण हाथ की ओर तथा उदार विचार के लोग वाम हाथ की ओर बैठते हैं। परिणाम इसका यह हो गया है कि संकुचित विचार-वालों का नाम जहाँ दक्षिणीय (right) पड़ गया है वहाँ उदार विचार-वाले लोगों का नाम वामीय (left) पड़ गया है। उदार तथा संकुचित विचार शब्द सापेक्षिक है। जो आज संकुचित विचारवाला कहा जाता है कल वही उदार विचार का कहा जा सकता है। दिन पर दिन जिस प्रकार जनता में विचार संबंधी विकास होता है उसी प्रकार उसमें उदार विचारवाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ने लगती है। प्रतिनिधि सभाभवन में विचार-विभिन्नता के अनुसार ही सभ्यों की स्थान-विभिन्नता की हुई है। प्रधान के बायें हाथ के समीप ही जहाँ साधारण उदार विचारवाले सभ्यों का स्थान है वहाँ अति उदार विचारवाले सभ्यों का स्थान अत्यंत बाईं ओर रखा हुआ है। और इसी प्रकार विचारों की उदारता के दर्जे के अनुसार सभ्य लोग आगे पीछे बैठते हैं। इस कार्यक्रम के कारण उनके नाम भी प्रधान की दूरी के अनुसार ही पड़ गए हैं जो कि ऊपर दिखाए गए हैं।

णियों की संख्या अधिक थी तथा वे स्वयं भी संगठित थे, पर समय के बीतने के साथ साथ इनकी शक्ति, संख्या और संगठन तीनों ही लुप्त होते जाँयगे और इनके स्थानीय दक्षिणियों में इन तीनों की क्रमशः वृद्धि होती जायगी। यह हम लिख चुके हैं कि फ्रांस का प्रथम प्रधान दीपर्स चुना गया था। यद्यपि दीपर्स दक्षिणीय था तथापि इसका विचार यह था कि-"इस समय के लिये फ्रांस में प्रतिनिधि राज्य ही उपयुक्त था।" १८७३ में अतिवामीय दल प्रबल हुआ। उस समय दीपर्स जैसे व्यक्ति का प्रधान पद पर स्थित रहना अनुचित ही था। इसके त्यागपत्र दे देने के पश्चात् मैक्माहन को प्रधान पद दिया गया। इसने अपनी मंत्रिसभा मध्य वामियों में से चुन कर बनाई परंतु अति वामियों की प्रबलता ने इसका भी शीघ्रता से ही अधःपात कर दिया। १८७६ तक इसी प्रकार दलों के कारण राज्य में अस्थिरता रही। बड़ी कठिनता से १८७६ में अंतरंग सभा और प्रतिनिधि सभा का प्रथम चुनाव हुआ। चुनाव में अंतरंग सभा में दक्षिणियों की ही अधिकता थी पर प्रतिनिधि सभा में वामियों का आधिक्य था। ज्यों ज्यों समय गुजरता गया त्यों त्यों प्रतिनिधि सभा में उदार विचारवालों की संख्या बढ़ने लगी। आदि में जहाँ उदार तथा मध्यम उदार दल ही थे वहाँ कुछ समय के बाद ही अति उदार विचारवालों का भी प्रवेश हुआ। इन्होंने अन्यों से पार्थक्य दिखाने के लिये अपने को अवसरवादी के नाम से पुकारना प्रारंभ किया तथा उदार और मध्यम दलवालों ने अपने को प्रति-

निधि राज्यवादी कहना प्रारंभ कर दिया। अवसरवादियों की प्रधानता राज्य में दिन पर दिन अस्थिरता लाने लगी और साथ ही फरासीसियों के अंतरीय और वैय्यक्तिक मामलों में राज्य का हाथ बढ़ गया। राज्य की पाठशालाओं और कालेजों से धर्मशिक्षा हटा दी गई। स्थान स्थान पर साम्राज्य में उदार विचारवाले राज्याधिकारी नियत किए गए। इन सब परिवर्तनों तथा अस्थिरताओं का प्रभाव भयंकर हुआ। जनता उदार विचारों से संकुचित विचारों में परिवर्त्तित हो गई पर राज्य दिन पर दिन उदार विचारों की ओर झुक गया। जनता तथा राज्य के विचारों के विरोध से जनरल वालंगर ने लाभ उठाने का यत्न किया। यह विचार में दक्षिणीय था और राजा के राज्य को ही पुनः देश में ले आना चाहता था। पहले पहल इसने भिन्न भिन्न मंत्रिपद ग्रहण किए। इस प्रकार करते करते १८८९ में इसने प्रधान पद के लिये यत्न किया। परंतु राज्य के संपूर्ण यत्न से यह चुनाव में न आ सका। वालंगर के अधःपात से दक्षिणीय दल शक्ति में बहुत ही कम हो गया और साथ ही राजकार्य भी दूसरे ही ढंग पर चलने लगा।

यह पहले दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार अवसरवादियों ने देश के अंतरीय मामलों तथा चर्च पर आक्रमण किया। फ्रांस में धर्म तथा राज्य का बहुत ही अधिक घनिष्ठ संबंध है। बड़े बड़े पादरियों को राज्य नियत करता है और वेतन भी राज्य ही देता है। कैथोलिक धर्म में सिद्धांत ही ऐसे हैं जिनसे उस धर्म को

माननेवाले प्रातिनिधि राजवादी हो ही नहीं सकते । अव-सरवादियों का इनके प्रति विरोध भी इसी लिये था। १८९० में एक विचित्र घटना हुई । पादरी लैवीगेरी ने अपने आपको प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यवादी उद्घोषित किया। यह बड़ा ही प्रभावशाली व्यक्ति था। कुछ ही समय में बहुत से कैथोलिक इसके साथी हो गए। इन सब लोगों ने अपने आपको रालीज़ के नाम से पुकारना शुरू किया। सन् १८९२ में जो चुनाव हुआ उसमें भिन्न भिन्न दलों के सभ्यों की संख्या इस प्रकार थी—

दल			सभ्य
सीमांतवादीय	Socialists	समष्टिवादी	४९
अतिवामीय	Redicals	रेडिकल्स	१२२
वामीय	Republicans of Government	प्रतिनिधि राज्य-वादी	३११
मध्यम वामीय	Rallies	रालीज़	३५
दाक्षिणीय	Right	दक्षिणीय	५८

१८९२ के अनंतर अब तक फ्रांस की प्रतिनिधि सभा के सभ्यों में यही यत्न होता रहा है कि वे लोग आपस के छोटे मोटे सिद्धांत संबंधी भेदों को न गिनते हुए 'उदार तथा संकु-चित' इन दो दलों में विभक्त हो जाँय जिससे इंगलैंड की तरह फ्रांस में भी प्रतिनिधि राज्य स्थिरता तथा शांति से चल सके। देखें उनका उद्देश्य कब पूरा होता है।

तीसरा परिच्छेद।

जर्मनी।

जर्मन राष्ट्रसंघटन।

प्रशियन राजाओं के पूर्वज ब्रांदनवर्ग के इलैक्टर्स को सत्रहवीं सदी में बाल्टिक समुद्र पर प्रशिया का प्रांत तथा राइन नदी पर क्लीव्ज का प्रांत शासन करने के लिये मिला। उन दिनों जर्मनी पर सैकड़ों छोटे छोटे मांडलिक राजाओं का शासन था। इन राजाओं का जर्मन-सम्राट् से नाममात्र का संबंध था और वह भी इस लिये कि जर्मन-सम्राट् ही पवित्र रोमन साम्राज्य का शिरोमणि गिना जाता था।

अन्य सब जर्मन राष्ट्रों में केवल एकमात्र प्रशिया ऐसा ही था जो कि दिन पर दिन आकार तथा शक्ति में वृद्धि कर रहा था। इसका कारण यह था कि १४९३ में प्रशिया में एक नियम पास किया गया जिसके अनुसार इलैक्टर्स के पुत्रों में प्रशिया के प्रांत का बाँटा जाना निषिद्ध किया गया तथा एक ही पुत्र को संपूर्ण प्रांत का अधिपति बनाना उचित ठहराया गया। इस नियम के पास किए जाने में तथा प्रशिया के विस्तृत प्रांत के विभक्त न होने से होहंजालर्न के परिवार के शासकों की बुद्धिमत्ता ही कही जा सकती है। तीस वर्षीय युद्ध की समाप्ति पर महान् इलैक्टर ने बहुत से प्रांत प्राप्त कर लिए जिससे प्रशिया आकार में बहुत ही अधिक बढ़ गया। अगली ही शताब्दी में फ्रैडरिक दी ग्रेट ने कुछ प्रांत प्रशिया में और जोड़े जिससे

उसकी जनसंख्या पूर्वापेक्षा द्विगुण हो गई । कुछ समय के अनंतर युरोप की रंगभूमि पर नेपोलियन बोनापार्ट का उदय हुआ । इसने प्रशिया की वृद्धि एक दम रोक दी तथा उसके आधे प्रांत छीन लिए। इन प्रांतों को छीन कर नेपोलियन ने जहाँ प्रशिया की शक्ति को बहुत ही कम कर दिया वहाँ इन प्रांतों के साथ कुछ छोटे छोटे अन्य प्रांतों को जोड़ कर एक नया संघटन बनाया जिसका नाम "राइन का संघटन" रक्खा। इस संघटन के बनाने में नेपोलियन का उद्देश्य फ्रांस की शक्ति को बढ़ाना था परंतु इस कार्य में वह सफल न हो सका। नेपोलियन के अधःपतन के दिनों में उसका बनाया हुआ 'राइन का संघटन' उसी के विरुद्ध हुआ। इस महापुरुष से जर्मनी ने 'संघटन' की शिक्षा ले ली थी। जिस समय इसका अधःपतन हुआ उसी समय छोटे छोटे सारे जर्मन राष्ट्र वायना की संधि के अनुसार अपने आपको एक दूसरे से संघटित करने का यत्न करने लगे। इतिहास में यह संघटन 'जर्मन अंतर्जातीय संघटन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस संघटन का मुख्य प्रयोजन जर्मन राष्ट्रों का वाह्य तथा अंतरीय विक्षोभों से अपने आपको स्वरक्षित करना था। संघटन की कार्रवाई प्रतिनिधि सभा द्वारा होती थी। प्रतिनिधि सभा के सभ्य इस बात पर वाधित थे कि वे अपने अपने राष्ट्रों की ही सम्मति विवादास्पद विषयों पर दें, न कि अपनी। प्रतिनिधि सभा की प्रधानी जहाँ आस्ट्रिया के पास थी वहाँ उपप्रधानी प्रशिया के हाथ में थी।

नेपोलियन की लड़ाइयों के बाद ही जर्मनी में जातीयता का उदय हुआ। जातीयता का यह भाव जनता में इतना अधिक था जितना कि किसी एक व्यक्ति में होता है। ये लोग 'उदार दल' के नाम से उस समय बुलाए जाते थे। उदार दलवालों की संख्या बहुत ही कम थी। अतः वे लोग जर्मन राजनीति में कोई विशेष अंतर न डाल सके। १८४८ तथा १८४९ में देश की अवस्था बदल गई तथा उदार दलवाले प्रबल हो गए। ये लोग 'जर्मन-जातीय-संघटन' करने का उद्योग करने लगे। १८४८ की मई में फ्रेंकफोर्ट नामक स्थान पर प्रथम जर्मन जातीय प्रतिनिधि सभा बैठी, परंतु यह सभा निष्फल-प्रयत्न हुई, क्योंकि इसके किसी भी सभ्य ने जर्मन साम्राज्य की कोई 'उपयुक्त शासनपद्धति' का अभी तक निर्माण न किया था। १८४९ में 'शासन-पद्धति' का निर्माण मोटे तौर पर किया गया परंतु इस एक वर्ष के अंतर में जर्मनी में ऐसे ऐसे परिवर्तन हो गए थे जिनसे इस 'शासनपद्धति' के अनुसार कार्य का होना कठिन था। आस्ट्रिया ने १८४८ की अपनी कमजोरी दूर कर एक वर्ष के अंतर में शक्ति प्राप्त कर ली थी। अंतर्जातीय संघटन की प्रधानता छोड़ने पर आस्ट्रिया भला कब तैयार हो सकता था। इस दशा में किसी एक जातीय सभा का निर्माण कितना कठिन है यह किसी से छिपा नहीं है। जर्मनी की आक्रांति समाप्त हो चुकी थी। आस्ट्रिया के शक्ति प्राप्त कर लेने से प्रशिया को अंतर्जातीय संघटन में उसकी प्रधानता पुनः माननी पड़ी। परंतु यह अवस्था देर तक न रही।

इटली की घटनाओं ने जर्मनी को दस वर्ष के लिये आक्रांति करने पर पुनः सन्नद्ध कर दिया। इसी समय दैवी घटना से जर्मनी में एक महान्नीतिज्ञ, बिस्मार्क नामक व्यक्ति उत्पन्न हुआ जिसने जर्मनी को संसार में एक शक्तिशालिनी जाति के स्थान पर पहुँचा दिया और संपूर्ण युरोप की आकृति भी बदल दी।

पहले तो बिस्मार्क अंतरजातीय संघटन की प्रतिनिधि सभा में प्रशिया की ओर से प्रतिनिधि बन कर पहुँचा। इसने वहाँ पहुँचते ही यह देख लिया कि जब तक आस्ट्रिया जर्मन-राजनीति से पृथक् न किया जायगा तब तक जर्मन राष्ट्रसंघटन का होना असंभव है। इस बात को देख कर बिस्मार्क ने आस्ट्रिया से युद्ध करना जर्मन-राष्ट्र-संघटन की पूर्णता तथा स्थिरता के लिये अत्यंत आवश्यक समझा। यही एक बात थी जो कि उदार दलवालों को न सूझी थी।

१८६४ में बिस्मार्क ने डेनमार्क से श्लीस्विग तथा हाल्स्टेन नामक प्रांत छीनने के लिये आस्ट्रिया को प्रशिया के साथ मिलने में उत्तेजित किया। जब दोनों प्रांत जीते गए तब उनके बटाव के समय आस्ट्रिया से बिस्मार्क जान बूझ कर एक दम झगड़ पड़ा। यद्यपि 'जर्मन अंतर्जातीय संघटन' के अधिकतम सभ्य आस्ट्रिया के ही पक्ष में थे परंतु बिस्मार्क को इससे क्या ?। बिस्मार्क ने बिना किसी प्रकार की परवाह किए १८६६ में आस्ट्रिया को तथा उसके साथी अन्य कई एक छोटे छोटे जर्मन राष्ट्रों को बहुत बुरी तरह पराजित किया।

बिस्मार्क की इच्छा तो जर्मन राष्ट्रसंघटन में एक आस्ट्रिया को छोड़ कर अन्य सब जर्मनराष्ट्रों को सम्मिलित करने की थी, परंतु नेपोलियन तृतीय के हस्तक्षेप के कारण वह ऐसा न कर सका। जर्मन राष्ट्रसंघटन की सीमा मेन नदी के तटवर्ती देशों तक ही बिस्मार्क को रखनी पड़ी। जो जो जर्मन राष्ट्र अस्ट्रिया के साथ मिल कर प्रूशिया के विरुद्ध लड़े थे उन सबों की स्वतंत्रता नष्ट कर बिस्मार्क ने उन्हें प्रूशिया में ही मिला दिया। बिस्मार्क के इस कार्य से प्रूशिया की शक्ति पूर्वापेक्षा और भी अधिक बढ़ गई। इस प्रकार हेनोबर, ऐलक्टोरलहेंस, नासु, फ्रैंकफोर्ट और श्लीस्विग हाल्स्टन आदि राष्ट्र प्रूशिया में ही गिने जाने लगे जो कि आस्ट्रिया के युद्ध से पूर्व पृथक् स्वतंत्र राष्ट्र थे। मेन नदी के उत्तरीय जर्मन राष्ट्रों को मिला कर बिस्मार्क ने उनका नाम 'उत्तरीय जर्मन राष्ट्रसंघटन' रखा। इस संघटन का प्रधान प्रूशिया का राजा बनाया गया तथा संघटन के प्रबंध के लिये दो सभाएँ निर्माण की गई जिनमें से एक का नाम बंदेस्रात तथा द्वितीय का नाम रीशटैग रखा गया। बंदेस्रात को हम जहाँ जर्मन राष्ट्रसभा के नाम से आगे चल कर लिखेंगे वहाँ रीशटैग को हम जर्मन प्रतिनिधि सभा के नाम से लिखेंगे। प्रतिनिधि सभा में सभ्य जर्मन जनता की ओर से आगे नियत किए गए। राष्ट्रसभा में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के ही प्रतिनिधि आने निश्चित हुए। आस्ट्रिया को जर्मन-राजनीति से सर्वथा ही पृथक् कर दिया गया पर मेन नदी के दक्षिण के चार प्रांत–बवेरिया, वर्टमवर्ग बेदन, हेंस, जर्मनराष्ट्रसंघटन में और शामिल कर दिए गए।

इन प्रांतों के प्रतिनिधियों का राष्ट्रसभा तथा प्रातिनिधि सभा में जाना बिस्मार्क ने स्वीकृत किया। यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इन चारों प्रांतों को बड़े परिश्रम से बिस्मार्क जर्मन-राष्ट्र संघटन में कुछ कुछ मिला सका। १८७० में जर्मनी का फ्रांस से युद्ध हुआ जिससे जर्मनी में जातीय जोश प्रबल हो उठा। इसका परिणाम यह हुआ कि दक्षिणीय चारों प्रांत भी बिस्मार्क के अविश्रांत परिश्रम से जर्मन-राष्ट्र-संघटन में पूरी तौर से शामिल हो गए। इस प्रकार जब सब राष्ट्र परस्पर मिल गए तब जर्मन-राष्ट्र संघटन का नाम जर्मन-साम्राज्य रख दिया गया तथा इस संघटन के प्रधान प्रशिया के राजा को सम्राट् की उपाधि दी गई।

यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि किस प्रकार 'जर्मन-राष्ट्र संघटन' का निर्माता एकमात्र बिस्मार्क है।

जर्मन राष्ट्रसंघटन के गुण।

इस संघटन के निर्माण में बिस्मार्क का उद्देश्य जर्मन-साम्राज्य को एक सैनिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करना था। यही कारण है कि इस संघटन के निर्माण में जहाँ बिस्मार्क ने कई एक बातों की ढील ढाल की है वहाँ स्थल सेना, सामुद्रिक सेना, तथा कर के मामलों में उसने बड़ी ही बुद्धिमत्ता से नियम बनाए हैं। जर्मन साम्राज्य को प्रायः जर्मन-राष्ट्र संघटन का नाम दिया जाता है परंतु यह कहाँ तक उचित है यह विचारणीय है। जहाँ पर हम राष्ट्र-संघटन का नाम दिया करते हैं वहाँ उसका भाव यह हुआ करता है कि

मुख्य राष्ट्र तथा प्रांतिक राष्ट्रों की शक्ति तथा नियमों में प्रजा के अनुसार पारस्परिक भेद हैं। साथ ही हमारा यह भी भाव होता है कि जो कार्य मुख्य राष्ट्र के अधिकार की सीमा में है वह कार्य वह अपने ही अधिकारियों द्वारा करावे तथा उसका प्रबंध भी वह स्वयं ही करे। दृष्टांत के तौर पर 'अमेरिका के राष्ट्रसंघटन' को लिया जाय। अमेरिकन जातीय-सभा (Congress) तट-कर लगाती है। अमेरिका का 'तट-कर विभाग' इस कर को एकत्रित करता है। इस विभाग के अधिकारियों द्वारा यदि राज्यनियम के विरुद्ध कोई अनुचित कार्रवाई हो जाय तो उसका निर्णय प्रांतिक राष्ट्रीय न्यायालय ही करते हैं। परंतु जर्मनी में इसके सर्वथा ही विपरीत है। जर्मनी में मध्य राज्य (Central Government) की शक्ति बहुत ही अधिक विस्तृत है। अमेरिकन जातीय सभा के हाथ में जो कुछ भी नियामक शक्ति है वह सब तो जर्मनी के मध्य राज्य के पास विद्यमान ही है, परंतु उससे भी अधिक कुछ शक्तियाँ जर्मन मध्य राज्य के हाथ में हैं जिनका उल्लेख करना नितांत आवश्यक प्रतीत होता है। तट-कर तथा अन्य कर लगाने के अतिरिक्त वाधित व्यापार, स्थल सेना, नौसेना, तथा अन्य बहुत से घरेलू प्रबंध भी जर्मनी में मध्य राज्य की शक्ति की सीमा से बाहर नहीं हैं। जर्मनी में पोस्ट आफिस, रेल, तार नदी, नहर, नागरिकत्व का अधिकार, यात्रा, स्थानपरिवर्तन, व्यापार करना, तोल माप के नियम, मुद्रानिर्माण, नोट् चलाना, बैंक, पेटंट्स, मुद्रणाधिकार,

प्रेस, सभा, दीवानी-फौजदारी के नियम आदि संपूर्ण बातें जर्मन जातीय सभा या जर्मन मध्य राज्य के ही हाथ में हैं। इन सब बातों में जर्मन मध्य राज्य ही नियम बनाता है न कि प्रांतिक राज्य।

परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि जहाँ जर्मनी में मध्य राज्य की नियामक शक्ति बहुत ही अधिक है वहाँ उसकी शासक शक्ति बहुत ही न्यून है। जिन जिन प्रबंध के विषयों में मध्य राज्य को शासन का भी अधिकार है उन पर भी मध्य राज्य के अधिकारियों पर प्रांतिक राज्य अपना निरीक्षक नियत कर सकते हैं। परंतु यहाँ पर एक प्रश्न स्वाभाविक तौर पर उत्पन्न होता है कि यदि किसी प्रांतिक राज्य के नियम को मध्य राज्य न स्वीकार करे उस दशा में क्या होता है ?

इसका उत्तर यही है कि प्रांतिक राज्य तथा मध्य राज्य का झगड़ा जर्मन राष्ट्रसभा में उपस्थित किया जाता है। जो वह निर्णय करे उसी को दोनों को मानना पड़ता है और यदि कोई प्रांतिक राज्य इस निर्णय पर चलने को उद्यत न हो तो उस दशा में जर्मन राष्ट्रसभा उस पर युद्ध उद्घोषित करके बलात् उसे उस निर्णय पर चलवा सकती है। परंतु इस सीमा तक आज तक किसी भी प्रांतिक राज्य की अवस्था नहीं पहुँची है। यह क्यों ? इसका कारण यह है कि राष्ट्रसभा पृशिया के विरुद्ध तो युद्ध उद्घोषित करने में सर्वथा असमर्थ ही है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह है कि पृशिया का राजा ही राष्ट्रसभा का प्रधान है। अपने

प्रधान के ही विरुद्ध राष्ट्रसभा का युद्ध उद्घोषित कर देना यदि असंभव नहीं है तो संभव भी सहज से ही नहीं कहा जा सकता है। और यदि संभव कह भी दें तब भी एक दूसरा कारण और है जिससे यह घटना नहीं उत्पन्न हो सकती। केवल प्राशिया की ही इतनी शक्ति है कि राष्ट्रसभा के संपूर्ण राष्ट्र मिल कर भी उसे पराजित कर सकने में सर्वथा ही असमर्थ हैं। इस दशा में यह तो स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रसभा प्रशिया के विरुद्ध युद्ध उद्घोषित नहीं कर सकती। अब रहे अन्य प्रांतिक राज्य। वे इतने छोटे तथा शक्ति में इतने न्यून हैं कि वे राष्ट्रसभा की आज्ञा के विरुद्ध चलने का साहस नहीं कर सकते हैं। यदि उनमें से कोई प्रांतिक राज्य ऐसा करने का साहस भी करे तो उसे प्रशिया तथा अन्य संपूर्ण राष्ट्रों की सम्मिलित सेना से युद्ध करना पड़ेगा जो कि उसकी शक्ति से बाहर है।

जिस स्थान पर हम 'राष्ट्र-संघटन' शब्द प्रयुक्त करते हैं वहाँ पर हमारा एक भाव यह भी होता है कि उस संघटन में सम्मिलित

राष्ट्रसंघटन।

प्रत्येक राष्ट्र की शक्ति तथा अधिकार समान होने चाहिएँ। परंतु जर्मन राष्ट्रसंघटन में सर्वत्र असमानता ही असमानता विद्यमान है। प्रशिया की जनसंख्या जहाँ संपूर्ण 'जर्मन राष्ट्रसंघटन' की जनसंख्या $\frac{3}{5}$ है वहाँ अन्य सब २४ जर्मन राष्ट्रों की जनसंख्या $\frac{2}{5}$ ही है। इस दशा में प्रशिया तथा अन्य राष्ट्रों का संघटन शेर तथा सियार का संघटन कहा जा सकता है। यहाँ पर यह स्पष्ट स्पष्ट लिख देना अत्युक्ति करना

न होगा कि वास्तव में प्रशिया ही संपूर्ण जर्मन संघटन का शासक है, जिसमें सलाह के लिये उसने अन्य राष्ट्रों को भी सम्मिलित कर लिया है। प्रशिया को एक सब से बड़ा लाभ तो यही है कि उसका राजा ही जर्मन सम्राट् है। दूसरा लाभ यह भी है कि उसके ही सबसे अधिक सभ्य राष्ट्रसभा में हैं। जर्मन प्रतिनिधि सभा का कोई भी पास किया हुआ प्रस्ताव राष्ट्रसभा में एक मात्र चौदह विरोधी सम्मातियों से ही रद्द किया जा सकता है। प्रशिया के राष्ट्रसभा में १७ सभ्य हैं। इस प्रकार प्रातिनिधि सभा के किसी भी प्रस्ताव को पास करने या न करने में उसका अकेले ही कितना हाथ है यह किसी से छिपा नहीं है। इन सब अधिकारों के अतिरिक्त स्थल सेना, नौसेना, कर आदि संबंधी नियमों के पास करवाने वा न करवाने में उसे विशेष अधिकार प्राप्त हैं। कुछ अधिकार उसने और प्राप्त कर लिए हैं जिनका उल्लेख हम आगे चल कर स्वयं ही करेंगे। संपूर्ण जर्मन सेनाओं का एकमात्र सेनापति प्राशिया का ही राजा है। उसकी आज्ञा पर चलना जर्मन सेनाओं का कर्तव्य है। बड़े बड़े सेनापातियों का नियत करना भी प्राशिया ही के राजा के हाथ में है।

जर्मनी में राष्ट्र अपने अधिकारों को बेंच तथा खरीद भी सकते हैं। वैल्डक के छोटे से राष्ट्र पर ऋण था। वहाँ के मांडलिक राजा ने उस प्रांत के शासन का अधिकार प्रशिया के हाथ में बेच दिया तथा स्वयं रुपया ले कर वह इटली में चला गया। तभी से प्रशिया के शासन में वैल्डक का प्रांत भी है।

ये तो हुए प्रशिया के अधिकार । अब हम अन्य छोटे छोटे राष्ट्रों के अधिकारों का भी निरीक्षण करेंगें ।

हैंबर्ग तथा ब्रिमेन के प्रांतों को यह अधिकार मिला हुआ था कि उनके बंदरगाह स्वतंत्र रहेंगे और उन पर जर्मन साम्राज्य के तट-कर संबंधी राज्यनियम न लगेंगे। कुछ समय हुआ कि इन दोनों प्रांतों ने अपना यह अधिकार भी छोड़ दिया है। कुछ अधिकार दक्षिणी जर्मन राष्ट्रों को प्राप्त हैं जो कि उन्हों ने जर्मन राष्ट्रसंघटन में सम्मिलित होने के बदले में प्राप्त किए थे। इसी प्रकार बवेरिया, वर्टबर्ग के निज के पोस्ट आफिस तथा तारघर हैं । कुछ साधारण राजकीय नियमों को छोड़ कर इन पर अन्य किसी प्रकार का नियम नहीं लग सकता है। शांति के समय में बवेरिया ही अपनी सेनाओं का सेनापति नियत करता है तथा उसका प्रबंध करता है। सम्राट् तो उस समय में केवल एकमात्र निरीक्षक का ही काम करता है । बवेरिया रेल की सड़कों के मामले में भी स्वतंत्र है । बवेरिया, सैक्सनी, वर्टबर्ग के प्रतिनिधियों को विदेशी मामलात, सेना तथा दुर्ग संबंधी विषयों में जर्मन राष्ट्रसभा में उपस्थित होना आवश्यक है । उपरोक्त अधिकारों को इन सब राष्ट्रों की अपनी सम्मति के बिना शासनपद्धति संबंधी कोई भी राज्यनियम कम नहीं कर सकता है। प्रशिया के तथा प्रांतिक राष्ट्रों के अपने अपने अधिकारों पर जो कुछ हमें लिखना था हम लिख चुके। अब हम जर्मन प्रतिनिधि सभा तथा राष्ट्र सभा पर कुछ लिखेंगे ।

प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों का चुनाव गुप्त रीति

से साम्राज्य की जनता द्वारा होता है। जनता ही प्रतिनिधि सभा में अपने प्रतिनिधि भेजती है। चुनने का अधिकार २५ वर्ष की आयु से अधिक आयु वाले को ही है। परंतु यदि कोई व्यक्ति पच्चीस वर्ष की आयु का हो कर भी वह राज्यकर्मचारी है, दरिद्र या इस कार्य के अयोग्य है तो उसे प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं है। शासनपद्धति के निर्माणकाल में एक लाख जनसंख्या के प्रति केवल एक ही प्रातिनिधि भेजने का नियम था। उस समय इस नियम के अनुसार जिन जिन स्थानों तथा नगरों को जितने सभ्य भेजने का अधिकार मिला, वही अब तक चला आता है, यद्यपि कई स्थानों तथा नगरों की जनसंख्या बेहद बढ़ चुकी है। बार्लिन की जनसंख्या अब लगभग पंद्रह लाख के है। इस जनसंख्या के अनुसार बार्लिन के पंद्रह सभ्य प्रतिनिधि सभा में होने चाहिएं थे, परंतु अभी तक केवल छ ही हैं। यह क्यों? यह इसीलिये कि राज्य को इस बात का पूर्ण तौर पर निश्चय है कि बार्लिन की ओर से प्रायः समष्टिवादी या अति उदारविचार के व्यक्ति ही प्रतिनिधि सभा में प्रातिनिधि बन कर पहुँचेंगे। यदि बार्लिन को पंद्रह सभ्य भेजने का अधिकार दे दिया जाय तब तो इन समष्टिवादियों तथा अति उदारविचारवालों की संख्या प्रतिनिधि सभा में विशेष तौर पर बढ़ जायगी। यह राज्य को कब अभीष्ट हो सकता है? विचित्रता तो यह है कि प्रायः सब ही बड़े बड़े नगर इसी प्रकार के सभ्य भेजते हैं। यही कारण है कि राज्य ने सभ्य भेजने का पुनर्विभाग

प्रतिनिधि सभा।

(जन संख्या के अनुसार) चिरकाल से नहीं किया है। प्रतिनिधि सभा में ३९७ सभ्यों की स्थिति है । इन सभ्यों की भिन्न भिन्न संख्या भिन्न भिन्न प्रांतों से इस प्रकार आती है-

प्रांत	सभ्य
प्राशिया	२३५
बवेरिया	४८
सैकसनी	२३
वर्टबर्ग	१७
अलसेस लोरेन	१५
वेदन	१४
हेंस	९
मैक्लनबर्ग-स्वेरिन	६
सेक्स-वेमर	३
ब्रंजविनक	३
ओल्डन्बर्ग	३
हैंबर्ग	३
सैक्स मीनिजन	२
सैक्स कोवर्ग गाथ	२
अन्हाल्ट	२
एक एक सभ्य भेजनेवाले बारह प्रांत ...	१२
	३९७

प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को वेतन देना बिस्मार्क को अभीष्ट न था। यह भी इसलिये कि प्रतिनिधि सभा

में सभ्य होना भी कहीं जनता के लिये एक पेशा न बन जाय और जीविका का एक साधन न समझा जाय। जो कुछ भी हो। इस विधि को एकमात्र लाभकर कहना कठिन है। भिन्न भिन्न महाविद्यालयों के प्रोफेसर, जिनकी तनखाहें इतनी नहीं होती हैं कि वे बर्लिन जैसे नगर में निर्वाह कर सकें, प्रतिनिधि सभा में पहुँच कर जर्मन राजनीति में भाग लेने में असमर्थ हैं।

जर्मनी में उदार दल के व्यक्ति चिर काल से यह प्रयत्न कर रहे हैं कि प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को राज्य की ओर से तनखाहें मिला करें। १८८५ में समष्टिवादियों ने अपने सभ्यों को अपनी ओर से रुपया पहुँचाने का यत्न किया परंतु बिस्मार्क इस कार्य पर अधिक जला भुना था तथा उसने इस कार्य को नियम विरुद्ध भी ठहराया था। बिस्मार्क ने यह सब कुछ इसीलिये किया कि दरिद्र लोग प्रतिनिधि सभा को कहीं अपनी आजीविका का स्थान ही न बना लेवें। जर्मन प्रतिनिधि सभा को नियम संबंधी प्रायः सभी अधिकार प्राप्त हैं। इसके सभ्य भी अपने प्रधान को आप ही चुनते हैं। प्रतिनिधि सभा के कार्यक्रम को समुचित रीति पर चलाने के लिये जिन जिन नियमों की विशेष आवश्यकता होती है उन्हें वे स्वयं ही बना लेते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव समुचित रीति पर हुआ है वा नहीं, इस बात का निरीक्षण भी प्रतिनिधि सभा के सभ्य ही करते हैं।

प्रतिनिधि सभा के लिखित अधिकार तो बहुत ही अधिक हैं। कोई भी नियम राज्यनियम नहीं हो सकता है जब

तक कि उसमें प्रतिनिधि सभा कि सहमति न हो। साम्राज्य का भावी आयव्यय, जातीय ऋण, तथा नियमों के साथ संबंध रखनेवाली संधियों का प्रतिनिधि सभा द्वारा पास किया जाना आवश्यक है। यह सब होते हुए भी प्रतिनिधि सभा की शक्ति इतनी अधिक नहीं है, जितनी की काग़ज़ पर लिखी हुई प्रतीत होती है। आयव्यव तो वर्ष में प्रायः एक बार ही पेश होता है। कर संबंधी नियमों को बदलना प्रतिनिधि सभा के एकमात्र हाथ में नहीं है। इसमें जर्मन राष्ट्रसभा की स्वीकृति का होना आवश्यक है। जर्मन प्रतिनिधि सभा का आज कल केवल मुख्य कार्य यही है कि राष्ट्रसभा तथा महामंत्री (चांसलर) द्वारा पेश किए हुए प्रस्तावों का विचार करे तथा उन्हें स्वीकार करे अथवा उन प्रस्तावों को जिन स्थानों पर उसे सुधारना अभीष्ट हो सुधार दे। सारांश यह है कि प्रतिनिधि सभा नियम या शासन में जर्मन राजनीति को एकमात्र चलाने या बदलने में समर्थ नहीं है। प्रतिनिधि सभा के महत्व को अत्यंत कम कर देनेवाली बात एक यह भी है कि जर्मन राष्ट्रसभा जब चाहे तब समृाट् की सम्मति ले कर प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर सकती है तथा साम्राज्य को पुनः नए सिरे से प्रतिनिधियों के चुनने के लिये वाधित कर सकती है। १८७८, १८८७, और १८९३ में महामंत्री के पूस्तावों को पास करने में पृतिनिधि सभा ने ढील ढाल की थी। परिणाम यह हुआ कि महामंत्री ने सम्राट् की सम्मति से उसे बर्खास्त कर दिया तथा नए सभ्यों द्वारा अपने पूस्तावों को स्वीकार करा लिया।

इस प्रकार राष्ट्र सभा द्वारा प्रतिनिधि सभा का बर्खास्त किया जाना जर्मन प्रतिनिधि सभा की शक्ति को न्यून कर देता है और उसका मान कुछ भी नहीं रह जाता है।

शासनपद्धति के नियमों के अनुसार प्रतिनिधि सभा के सभ्य राजकीय प्रबंध पर प्रश्न कर सकते हैं, परंतु विचित्रता यह है कि वे प्रश्न किससे करें? कौन संपूर्ण प्रबंध का एक मात्र जिम्मेवार है? राष्ट्रसभा के सभ्य तथा महामंत्री प्रतिनिधि सभा में जाते हैं परंतु वे भी प्रांतीय राष्ट्रों के प्रतिनिधि के रूप में ही न कि राजकीय अधिकारी के रूप में। प्रायः प्रतिनिधि सभा में राजकीय प्रबंध आदि पर किए हुए आक्षेपों का उत्तर महामंत्री ही दे देता है। यदि उसकी इच्छा स्वयं उत्तर देने की न हो तो वह अपने प्रतिनिधियों द्वारा उन आक्षेपों का समाधान करवा देता है। पचास सभ्यों की यदि सम्मति हो जाय, तब तो किसी एक प्रश्न पर वाद विवाद देर तक किया जा सकता है, परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि जो कुछ भी वाद विवाद में निर्णय होता है उस पर कार्य करना मंत्रियों तथा महामंत्री के लिये आवश्यक नहीं है। इस दशा में प्रतिनिधि सभा जर्मन साम्राज्य की नीति की प्रकाशक या प्रेरक नहीं कही जा सकती। प्रतिनिधि सभा विरुद्ध क्यों न हो जाय, महामंत्री अपना पद छोड़ नहीं देता है, न वह यह अनुभव ही करता है कि जर्मन प्रतिनिधि सभा की सम्मति पर चलना उसका कोई कर्तव्य ही है। प्रतिनिधि सभा पर जो कुछ लिखना था लिखा जा चुका है अब हम जर्मन राष्ट्रसभा का कुछ निरी-

क्षण करेंगे। राष्ट्रसभा ही जर्मनी में प्रबंध तथा नियमों, न्याय तथा जर्मन राजनीति की प्रकाशक है। राष्ट्रसभा में प्रतिनिधि जनता की ओर से नहीं आते हैं अपितु भिन्न भिन्न छोटी छोटी रियासतों की ओर से आते हैं। जर्मन शासन-पद्धति में राष्ट्रसभा ऐसी मुख्य है कि बिना इसके ज्ञान के जर्मन शासनपद्धति को समझना बिलकुल असंभव हो जाता है।

जर्मन राष्ट्रसभा में भिन्न भिन्न जर्मन राष्ट्रों के राजाओं की ओर से तथा स्वतंत्र नगरों की अंतरंगसभा की ओर से प्रतिनिधि आते हैं। १८७१ में अलासेस लोरेन के प्रांत फ्रांस से ले लिए गए थे। इन्हें पहले राष्ट्रसभा में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त न था

राष्ट्रसभा।

यद्यपि प्रतिनिधि सभा में इनके प्रतिनिधि जाते भी थे। यह अत्यंत आश्चर्य की बात है कि १८७९ में इस राष्ट्र को भी राष्ट्र-सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया। इस राष्ट्र के प्रतिनिधि जहां राष्ट्रसभा में वाद विवाद में पूरी तौर पर भाग ले सकते हैं वहाँ उन्हें अपनी सम्मति देने का अधिकार अभी तक प्राप्त नहीं है। राष्ट्रसभा में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के कुल मिला कर ५८ प्रतिनिधि आते हैं जिसका ब्योरा इस प्रकार है —

राष्ट्र	*प्रतिनिधि*
प्रशिया	१७
बवेरिया	६
सैक्सनी	४
वर्टन्वर्ग	४

हेंस	...	...	...	...	...	३
बेदन	...	...	...	...	...	३
ब्रंजविक	...	...	...	...	...	२
मैक्लनबर्ग स्वेरिन	...		...	...	...	२
तीन स्वतंत्र नगरों के एक एक प्रतिनिधि					...	३
चौदह छोटी छोटी रियासतों या राष्ट्रों के एक एक प्रतिनिधि			...	...	...	१४
						५८

यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि प्रशिया ने वैल्डक के छोटे से राष्ट्र को खरीद लिया था। इस व्यापार से उसे वैल्डक की एक सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। १८८४-८५ में ब्रंजविक में कंबरलैंड के राजा को राजगद्दी न दे कर प्रशिया ने अपना ही प्रतिनिधि वहां प्रबंध करने के लिये भेजना प्रारंभ किया। इससे ब्रंजविक की दो सम्मतियाँ भी प्रशिया को ही प्राप्त हो गई हैं। इस प्रकार आज कल प्रशिया की राष्ट्रसभा में, वैल्डक तथा ब्रंजविक की सम्मतियों के प्राप्त हो जाने से १७ के स्थान पर उसकी बीस सम्मतियाँ हैं।

यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि राष्ट्रसभा में जा कर राष्ट्रीय प्रतिनिधियों को अपने अपने राष्ट्रों की ही सम्मतियों को देना पड़ता है चाहे वे स्वयं उस सम्मति के विरुद्ध ही क्यों न हों। वे वहां जा कर अपनी सम्मति को नहीं दे सकते हैं। यह अभी दिखाया जा चुका है कि ५८ सम्मतियों में अकेले प्रशिया के पास बीस सम्मतियाँ हैं। इससे

उसकी शक्ति कितनी अधिक है यह किसी से छिपा नहीं है। यह सब होते हुए भी कई एक विषयों पर छोटे छोटे सब जर्मन राष्ट्रों ने आपस में मिल कर प्रशिया की सम्मतियों को बड़ी बुरी तरह से पराजित किया है। १८७७ में प्रशिया की सम्मतियों के विरुद्ध बर्लिन के बदले लिप्जिक में ही राजकीय न्यायालय का स्थापित होना राष्ट्र-सभा में अन्य छोटे छोटे जर्मन राष्ट्रों की सम्मति से पास किया गया। १८७६ में बिस्मार्क का 'राजकीय रेलों' संबंधी प्रस्ताव प्रशिया के विरुद्ध अन्य राष्ट्रों की बहुसम्मति से गिर गया। १८७९ में 'राजकीय रेलों' संबंधी द्वितीय प्रस्ताव भी बवेरिया सैक्सनी, वर्टवर्ग की सम्मिलित सम्मतियों से न पास हो सका। सारांश यह कि यद्यपि प्रशिया की शक्ति राष्ट्रसभा में उसकी बीस सम्मतियों के कारण अपरिमित कही जा सकती है तथापि वह ऐसी नहीं है जिससे प्रशिया अन्य राष्ट्रों की कुछ भी परवाह न करते हुए स्वेच्छाचारी हो सके।

बर्लिन में राष्ट्रसभा के प्रतिनिधियों को राजदूतों की दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें राजदूतों के ही अधिकार भी प्राप्त हैं। यह पहले लिखा ही जा चुका है कि राष्ट्रसभा के सभ्य इस बात में बाधित तथा परतंत्र हैं कि वे राष्ट्रसभा में जा कर अपने अपने राष्ट्रों की दी हुई सम्मतियों को प्रगट करें, न कि अपनी। प्रायः राष्ट्रसभा के सभ्य अपने अपने राष्ट्रों के उच्च अधिकारी ही होते हैं। यदि कोई अपने राष्ट्र का मंत्री है तो दूसरा सभ्य अपने राष्ट्र की अंतरंग सभा का प्रधान हो सकता है। बहुत दिनों से छोटे छोटे राष्ट्रों की

ओर से यह कार्य भी आरंभ हो गया है कि वे आपस में मिल कर केवल एक ही सभ्य राष्ट्रसभा में भेजने के लिये चुन लेते हैं तथा उसीको अपनी अपनी सम्मतियों को राष्ट्रसभा में प्रगट करने का अधिकार दे देते हैं। १८८० में महामंत्री बिस्मार्क ने राष्ट्रसभा में स्टैंप ऐक्ट पेश किया। उसमें बहुत से परिवर्तन किए गए तथा सब से विचित्र बात जो उस समय हुई वह यह थी कि इस विषय में राष्ट्रसभा के एक प्रतिनिधि ने अकेले ही तेरह सम्मतियां दे दीं क्योंकि बहुत से छोटे छोटे राष्ट्रों ने व्यय को घटाने के लिये आपस में मिल कर एक ही व्यक्ति को चुना तथा उसीको अपनी अपनी सम्मतियों के देने का अधिकार दे कर राष्ट्रसभा में भेज दिया था। बिस्मार्क ने जब यह विचित्र घटना देखी तो उसे बहुत ही क्रोध आया। उसने इस प्रकार के कार्य को रोकने का प्रयत्न किया। परिणाम इसका यह हुआ कि राष्ट्रसभा की वर्ष में दो बैठकें होना निश्चित हुआ। प्रथम बैठक में राष्ट्र संबंधी आवश्यकीय प्रश्नों पर विचार होना नियत किया गया तथा द्वितीय बैठक में सामयिक प्रश्नों पर विचार होना ही निर्धारित किया गया। प्रथम बैठक में राष्ट्रसभा के सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का सम्मिलित होना आवश्यक ठहराया गया, साथ ही दूसरी बैठक में राष्ट्र की इच्छाओं पर प्रतिनिधियों का भेजना न भेजना छोड़ दिया गया।

पृशिया की राष्ट्रसभा में कितनी प्रधानता है यह दिखाया जा चुका है। यदि पृशिया को बीस सम्मतियाँ देने का अधिकार प्राप्त है तो उसी का राजा जर्मन सम्राट् भी

होता है। जर्मन साम्राज्य की शासनपद्धति के अनुसार महामंत्री का नियत करना सम्राट् के ही हाथ में है। सम्राट् प्रूशिया में से ही प्रायः किसी न किसी व्यक्ति को महामंत्री का पद देता है। महामंत्री की कितनी शक्ति होती है यह हम आगे चल कर स्वयं ही लिखेंगे परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि महामंत्री ही राष्ट्रसभा का प्रधान होता है और यदि वह अपने स्थान पर किसी दूसरे को राष्ट्रसभा का प्रधान नियत कर देना चाहे तो वह ऐसा कर सकता है। सब प्रकार के प्रार्थनापत्रों का महामंत्री के हाथ में से गुजरना अत्यंत आवश्यक है। वही उन प्रार्थनापत्रों में से आवश्यक पत्रों को छाँट कर सम्राट् के पास स्वीकृति के लिये भेज देता है। जर्मन शासनपद्धति के अनुसार भिन्न भिन्न विभागों के अधिकारियों का राष्ट्रसभा का सभ्य होना आवश्यक है। इस प्रकार आज कल कुल मिला कर आठ विभाग हैं जिनके प्रबंधकर्ता राष्ट्रसभा के सभ्य ही हैं। वे विभाग निम्नलिखित हैं—

(१) दुर्ग तथा सेना विभाग
(२) सामुद्रिक विभाग
(३) तटकर तथा कर-विभाग
(४) व्यापार व्यवसाय विभाग
(५) रेल, डाक, तार विभाग
(६) न्याय विभाग
(७) आर्थिक विभाग
(८) विदेशी विभाग

इन विभागों की उपसमितियों में प्रशिया के अतिरिक्त अन्य चार राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का उपस्थित होना भी आवश्यक है। दुर्ग तथा सेना विभाग की उपसमिति में तो बवेरिया के प्रतिनिधि का उपस्थित होना शासनपद्धति के अनुसार निश्चित है, शेष सभ्यों को सम्राट् स्वयं नियत कर देता है। अन्य विभागों की उपसमितियों के सभ्यों को राष्ट्रसभा स्वयं ही नियत करती है। इसी प्रकार विदेशी विभाग की उपसमिति में बवेरिया, सैक्सनी, वर्टबर्ग के सभ्यों तथा राष्ट्रसभा द्वारा नियत किए हुए अन्य दो सभ्यों का शामिल होना ज़रूरी है। शासनपद्धति के अनुसार बवेरिया का प्रतिनिधि ही इस उपसमिति का प्रधान होता है।

अमेरिकन अंतरंग सभा के सदृश जर्मन राष्ट्रसभा के भी नियामक, शासक तथा न्याय संबंधी तीन कार्य हैं। कोई नियम राज्यनियम नहीं हो सकता है जब तक कि राष्ट्रसभा की स्वीकृति न हो। इसमें संदेह नहीं है कि युद्ध के उद्घोषित करने में जर्मन सम्राट् का बड़ा भारी हाथ है परंतु साथ ही यहाँ पर यह भी न भूलना चाहिए कि किसी भी राष्ट्र पर सम्राट् आक्रमण नहीं कर सकता है जब तक कि वह राष्ट्रसभा की स्वीकृति न ले ले। राष्ट्रसभा, सम्राट् की अनुमति से प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर नए सिरे से पुनः चुनाव के लिये प्रेरित कर सकती है यह पहले लिखा जा चुका है। अमेरिकन अंतरंग सभा के सदृश जर्मन राष्ट्रसभा के ही हाथ में राज्याधिकारियों को नियत

करना तथा विदेशी संधि आदि का करना है। परंतु यहाँ पर इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि संधि आदि के मामले में राष्ट्रसभा को प्रतिनिधि सभा की अनुमति अवश्यमेव लेनी पड़ती है।

राष्ट्रसभा ही साम्राज्य के मुख्य न्यायाधीश, कर को एकत्रित करनेवाले अधिकारी, तथा आयव्यय-विभाग के प्रबंधकर्त्ता आदि को नियत करती है। यदि एक राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र से कलह हो जाय तो उस दशा में राष्ट्रसभा ही न्यायसभा का काम करती है। सारांश यह है कि जर्मन राष्ट्रसभा ही जर्मन राष्ट्र-संघटन की रक्षक है तथा प्रत्येक राष्ट्र के अधिकारों को स्वरक्षित रखती है और राष्ट्रसंघटन या साम्राज्य के हित के लिये नए नए नियमों को भी बनाती है।

यदि किसी भी शासनपद्धति संबंधी नियम पर राष्ट्रसभा के चौदह सभ्यों की विरुद्ध सम्मतियाँ हो जाँय तो वह प्रस्ताव राज्यनियम नहीं बन सकता है। यह एक ऐसा नियम है जिस पर विशेष ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। इस नियम का तात्पर्य यह है कि कोई भी 'राष्ट्रसंघटन' संबंधी सुधार या परिवर्तन एकमात्र प्रशिया की सम्मति से ही गिर सकता है। बवेरिया, सैक्सनी, वर्टवर्ग ये तीनों छोटे छोटे राष्ट्र भी मिल कर वही शक्ति प्राप्त कर सकते हैं जो कि अकेले प्रशिया की है। स्वतंत्र तौर पर राष्ट्रसभा के सभ्य कुछ भी नहीं है क्योंकि वे इस बात में बाधित हैं कि वे अपने अपने राष्ट्रों की सम्मतियों को ही राष्ट्र-

सभा में प्रकट करें, पर साम्राज्य की संपूर्ण शासन कला को चलाने में उनका बड़ा भारी हाथ है। यहाँ पर एक बात और लिख देना हम आवश्यक समझते हैं कि राष्ट्रसभा की संपूर्ण कार्रवाई गुप्त तौर पर होती है तथा गुप्त ही रखी भी जाती है। राष्ट्रसभा में पेश किए हुए विषय एक बैठक की समाप्ति पर सदा के लिये अर्धसमाप्त ही नहीं छोड़ दिए जाते। असमाप्त विषयों को दूसरी बैठक में पुनः पेश कर दिया जाता है। इससे प्रत्येक विषय पर विचार समुचित रीति पर हो जाता है और कार्रवाई के गुप्त रखने से जर्मन राष्ट्रसंघटन में राष्ट्रों के पारस्परिक क्या झगड़े हैं इसका किसीको भी पता नहीं लगने पाता। इसका परिणाम यह होता है कि दूसरे देश जर्मन राष्ट्रों के पारस्परिक वैमनस्य से लाभ नहीं उठा सकते और सब के सब जर्मन राष्ट्र एक दूसरे से अत्यंत अधिक जुड़े हुए तथा संघटित प्रतीत होते हैं।

जर्मन शासनपद्धति के प्रधान प्रधान अंगों का वर्णन किया जा चुका है। न्यायालय का शासनपद्धति से कहाँ तक संबंध है यह किसीसे छिपा नहीं है।

न्यायालय।

राज्यनियमों के प्रचलित करने में न्यायालयों का बड़ा भारी भाग है। अतः अब हम कुछ शब्द जर्मन न्यायालयों पर ही इस समय लिखेंगे।

जर्मनी में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अपने अपने ही न्यायालय हैं। उनके न्यायाधीश आदि अधिकारी वे राष्ट्र स्वयं ही नियत करते हैं तथा निर्णय भी उसी राष्ट्र के नाम पर ही

किया जाता है, परंतु विचित्रता यह है कि राष्ट्रीय न्याया-लयों को साम्राज्य के नियमों पर ही अपना अपना कार्य करना पड़ता है। साम्राज्य का अपना मुख्य न्यायालय भी है, जिसमें साम्राज्य के प्रति देशद्रोह करनेवाले व्यक्तियों के अपराधों का निर्णय होता है तथा साम्राज्य के नियम संबंधी वाद विवाद तथा संदेहों का निर्णय किया जाता है। चिर काल से यह मुख्य न्यायालय राज्यनियम संबंधी त्रुटियों के सुधार का ही कार्य कर रहा है। आज कल अखबारों में यह विवाद चल रहा है कि शासनपद्धति के अनुसार राज्यनियमों को उचित या अनुचित ठहराना मुख्य न्यायालय का कार्य है वा नहीं। कुछ लोगों की सम्मति में ऐसा करना अनुचित नहीं है और कई लोगों की सम्मति में यह अनुचित है क्योंकि वे कहते हैं कि प्रत्येक राज्यनियम पर सम्राट् का हस्ताक्षर हो जाना ही इस बात का सूचक है कि वह राज्य-नियम शासन-पद्धति की नियम-धाराओं के अनुकूल है। यदि हम इस विचाररूपी संसार को छोड़ कर कार्यरूपी संसार में प्रवेश करें तो बहुत सी बातें सामने आ जाती हैं। कई बार ऐसा हो जाता है कि भिन्न भिन्न राष्ट्रों के नियमों की साम्राज्य के नियमों से टक्कर हो जाती है। इस दशा में किस के नियमों को न्यायालय काम में लावे यह संदेह हो जाता है। महाशय ब्रिंटन् कांक्स ने अपनी 'न्यायशक्ति तथा शासनपद्धति विरोधी नियम' (Judicial power and unconstitutional legislation) नामी पुस्तक में इस प्रकार की बहुत सी घटनाओं के उदाहरण दिए

हैं। मैं भी उनमें से एक घटना का वर्णन यहाँ पर कर देना उचित समझता हूँ। १८७५ में त्रिमन के न्यायालय ने साम्राज्य के नियमों के अनुसार बिना किसी प्रकार का बदला दिए एक मनुष्य की संपत्ति को छीन लेना उचित ठहराया परंतु यह निर्णय त्रिमन की शासनपद्धति के नियमों के सर्वथा ही विरुद्ध था। आठ वर्ष बाद त्रिमन के न्यायालय ने पुनः ऐसे ही अवसर पर पूर्ववत् ही निर्णय किया तथा साथ ही उसने कहा कि नागरिक या राष्ट्रीय शासन पद्धति के नियमों का उसी सीमा तक अवलंबन किया जा सकता है जिस सीमा तक वे साम्राज्य के नियमों के सहायक हैं अन्यथा नहीं। इन सब घटनाओं के होते हुए भी यह प्रश्न जैसा का तैसा ही संदिग्ध बना रहा कि ' क्या मुख्य न्यायालय किसी राज्यनियम को शासनपद्धति की नियम धारा के विरुद्ध ठहरा कर कार्य में लाने से छोड़ सकता है वा नहीं ?" इसका समुचित उत्तर जो कुछ भी हो, यहाँ पर इस विषय को स्पष्ट करने के लिये यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि मुख्य न्यायालय ने ऐसा कार्य अभी तक नहीं किया है और न वह ऐसा कर ही सकता है। इसमें भी कारण है। जिन देशों में मुख्य राज्य की शक्ति न्यून होती है वहीं पर ये शक्तियां मुख्य न्यायालयों को प्राप्त होती हैं। जर्मनी में मुख्य राज्य की शक्ति अनंत है। वहाँ मुख्य न्यायालय इस प्रकार के साहस के कार्य नहीं कर सकता है।

यह पूर्व लिखा जा चुका है प्रशिया के राजा को ही जर्मन संम्राट् की उपाधि दी गई है। इसमें संदेह नहीं कि सम्राट् का पद प्रायः वंशागत राजाओं के लिये ही प्रयुक्त हुआ करता है परंतु जर्मनी में इससे विपरीत है और यही कारण है कि जर्मन सम्राट् के राज्यारोहण की संपूर्ण विधियाँ प्रशिया के अनुसार ही होती हैं।

सम्राट् तथा महामंत्री।

सम्राट् नौ सेना तथा स्थल सेना का मुख्य सेनापति समझा जाता है और अन्य राजकीय विभागों में राष्ट्रसभा के एकमात्र प्रतिनिधि का कार्य करता है। इस दशा में सम्राट् को राष्ट्रसभा की अनुमति से ही कार्य करना पड़ता है। राष्ट्रसभा की अनुमति से सम्राट् विदेशीय राज्यों के साथ युद्ध की उद्घोषणा करता है। संधि आदि के करने में भी वह राष्ट्रसभा की शक्ति से बाहर नहीं है। सम्राट् प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर सकता है परंतु उसमें भी उसे राष्ट्रसभा से पूछना पड़ता है। राष्ट्रसभा द्वारा पास किए हुए नियमों को सम्राट् ही साम्राज्य में प्रचलित करता है और जर्मन साम्राज्य के महामंत्री को भी वही अपनी ओर से नियत करता है। सारांश यह है कि सम्राट् की शक्ति अत्यंत परिमित है और उस परिमित शक्ति में भी उसे राष्ट्रसभा का सदा ध्यान रखना पड़ता है।

प्रतिनिधि सभा में सम्राट् नहीं जाता है। महामंत्री भी वहाँ एक राज्याधिकारी के रूप में नहीं जाता, अपितु राष्ट्रसभा के एक प्रतिनिधि के रूप में। इन सब बातों के होते हुए भी सम्राट् की शक्ति प्रशिया के राजा के तौर पर

पर्याप्त है। प्रशिया की शक्ति राष्ट्रसभा में कितनी है यह पहले ही विस्तृत तौर पर लिखा जा चुका है। सारांश यह है कि जर्मनी का सम्राट् जहां सम्राट् के तौर पर बहुत ही अधिक परिमित शक्तिवाला है वहां प्रशिया के राजा के तौर पर उसकी शक्ति बहुत ही अधिक है ।

जर्मनी में कोई मंत्रिसभा नहीं है। राष्ट्रसंघटन का एकमात्र प्रबंधकर्त्ता महामंत्री ही कहा जा सकता है। साम्राज्य में संपूर्ण राज्याधिकारी इसी के अधीन कहे जाते हैं। इसके समान अधिकारवाला कोई भी नहीं होता है। महामंत्री की इस प्रकार की उच्च स्थिति बिस्मार्क की अपनी योग्यता के कारण ही कही जा सकती है। बिस्मार्क सब राज्यकार्यों को स्वयं ही करना चाहता था। उसे यह अभीष्ट न था कि उसके कार्य में विघ्न डालनेवाले अन्य बहुत से साथी उत्पन्न हो जाँय। प्रशियन मंत्रिसभा का उसे पूरा पूरा अनुभव था, जिसमें प्रत्येक मंत्री अपने अपने विभाग में बिलकुल स्वतंत्र था, तथा जहाँ मंत्रियों का पारस्परिक मेल भी न था। यही अवस्था वह जर्मन साम्राज्य में नहीं लाना चाहता था। बिस्मार्क को इस इस बात से घृणा थी कि वह एक नई मंत्रिसभा बना कर अपने आपको परतंत्रता में डाल दे। बिस्मार्क जैसा उच्च विचार का व्यक्ति भला कब मंत्रिसभा में जा कर प्रत्येक मंत्री को अपने कार्यों का औचित्य तथा अनौचित्य समझाना पसंद कर सकता था ? इन सब कारणों से बिस्मार्क ने ऐसे विभाग का निर्माण ही नहीं किया जिसके कारण भविष्यत् में उसे कठिनाइयाँ झेलनी पड़ें । अपनी शासनपद्धति

के अनुसार शासन के निरीक्षण तथा प्रबंध का भार उसने राष्ट्रसभा के हाथ में दिया और विदेशी विभाग तथा सैन्य विभाग का उत्तरदातृत्व जर्मन साम्राज्य की ओर से प्रुशिया के राजा के हाथ में दिया, क्योंकि यह कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में होना उचित था। महामंत्री ने स्वयं अपने आपको प्रुशिया के एक राज्याधिकारी का रूप दिया जिसका उत्तारदातृत्व सम्राट् के प्रति है न कि जनता के प्रति। यही कारण है कि महामंत्री के प्रस्तावों के विरुद्ध प्रतिनिधि सभा की सम्मतियों के होने पर भी महामंत्री कभी भी पदत्याग नहीं करता। प्रायः ऐसे अवसरों पर महामंत्री प्रतिनिधिसभा की बैठक उठा कर दूसरी बार चुनाव के लिये प्रेरित करता है। इस विधि द्वारा महामंत्री प्रायः सफल ही होता है तथा अपने प्रस्तावों को भी पास कराता है।

महामंत्री राष्ट्रसभा का प्रधान होता है और प्रति-निधि सभा के वाद विवादों में भी पूर्ण भाग लेता है। जर्मन सम्राट् के सदृश महामंत्री के भी दो प्रकार के अधिकार हैं। कुछ अधिकार तो उसे सम्राज्य की ओर से प्राप्त हैं, वैसे ही कुछ अधिकार उसे प्रशिया के प्रनिनिधि के तौर पर भी मिले हुए हैं।

सम्राट् की ओर से नियत किए जाने के कारण महामंत्री जर्मन सम्राज्य का एक बड़ा राज्याधिकारी होता है और राष्ट्रसभा का प्रधान भी वही होता है। महामंत्री ही राष्ट्र-सभा में प्रशिया की ओर से प्रतिनिधि का कार्य भी करता और इस अवस्था में जब चाहे तब किसी भी प्रस्ताव पर प्राशिया की बीस सम्मतियों को देकर सारी की सारी

जर्मन राजनीति की बागडोर अपने हाथ में कर सकता है। राष्ट्रसभा में प्राशिया का प्रातिनिधि होने से प्राशियन मंत्रिसभा का प्रधान भी महामंत्री ही प्रायः होता है।

बिस्मार्क के काल में महामंत्री की शक्ति बहुत ही अधिक हो गई थी। जर्मनी में उस समय महामंत्री को जो राज्य-कार्य करने पड़ते थे उतने कार्य शायद ही किसी राज्याधिकारी को संसार में करने पड़ते हों। यही कारण था कि बिस्मार्क ने कुछ समय के बाद एक उपमंत्री नियत किया जो कि उसकी बीमारी के दिनों में कार्य करता था। इसी प्रकार उपमंत्री की तरह अन्य राजकीय विभागों में भी उसने अस्थिर तौर पर कुछ एक व्यक्तियों को नियत किया जो कि उस विभाग का कार्य चलाते थे जब कि बिस्मार्क कार्य अधिक होने से उन उन विभागों पर अपना ध्यान न दे सकता था। सारांश यह है कि बिस्मार्क ने साम्राज्य का संपूर्ण भार अपने ऊपर ले लेना स्वीकृत कर लिया परंतु उसने मंत्रिविभाग का इसलिये निर्माण न किया कि कहीं उसके कार्य में विघ्न न पड़े। बिस्मार्क के अनंतर महामंत्री की शक्ति जर्मनी में कम हो गई और वह किस प्रकार कम हो गई यही हम अब दिखाने का यत्न करेंगे।

जर्मनी की शासनपद्धति में महामंत्री की शक्ति तथा उसका कार्य ध्यान देने योग्य है। सम्राट् तथा प्रातिनिधि सभा के साथ उसी का सीधा संबंध कहा जा सकता है।

महामंत्री की शक्ति। राष्ट्रसभा के साथ महामंत्री का कितना घनिष्ट संबंध है यह भी दिखाया जा चुका है। इन सब कार्यों का कर्ता धर्ता यदि एक मात्र महा-

मंत्री ही हो तो उसे अनंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ जाय, क्योंकि संपूर्ण साम्राज्य का उत्तरदातृत्व एक मात्र उसी पर आ पड़े। परंतु ऐसा नहीं है, नौ विभाग, विदेशीय विभाग तथा कुछ मुख्य मुख्य सेना संबंधी पदाधिकारियों के नियत करने आदि के कार्य को छोड़ कर अन्य शेष सब कार्यों में उसे पर्याप्त सहायता मिल जाती है। महामंत्री के पास राष्ट्रीय प्रबंध तथा कार्यों के निरीक्षण का भार ही बहुत कुछ रह जाता है। सम्राट् या राष्ट्र के कोई राजा भी महामंत्री के पद पर अपना प्रभुत्व नहीं प्रगट कर सकते। प्रतिनिधि सभा तथा राष्ट्रसभा में महामंत्री की शक्ति बहुत परिमित है। इसमें संदेह नहीं है कि महामंत्री ही राष्ट्रसभा का प्रधान होता है परंतु वहाँ उसका अधिकार नाम मात्र का होता है। महामंत्री को अमेरिकन मंत्रिसभा के उपप्रधान की उपमा दी जा सकती है, क्योंकि दोनों ही की शक्ति अपनी अपनी सभाओं में समान कही जा सकती है। प्राशिया की ओर से बोलने तथा सम्मति देने को छोड़ कर राष्ट्रसभा में महामंत्री को कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं है। साम्राज्य की नीति के चलाने में उसका कुछ भी हाथ नहीं है। राष्ट्रसभा में जा कर महामंत्री कहीं खिलौना ही न हो जाय अतः उसे प्राशिया की ओर से प्रतिनिधि चुन लिया जाता है, परंतु इस दशा में भी उसकी क्या शक्ति कही जा सकती है जब कि उसे प्राशियन राष्ट्र की सम्मति ही वहाँ पर देनी पड़े। इतना ही नहीं। यदि कहीं प्राशियन मंत्रिसभा का महामंत्री से किसी नियम के विषय में झगड़ा हो जाय तब

महामंत्री की शक्ति और भी कम हो सकती है, परंतु प्राय: ऐसा नहीं होता है। इसका कारण यह है कि प्राशियन मंत्रि-सभा के मंत्रिगण आपस में मिल कर नहीं रहते हैं। महामंत्री सदा उनकी पारस्परिक कलह से लाभ उठाता रहता है। मंत्रि-गण जब तक परस्पर न मिल जाँय तब तक वे लोग महामंत्री के कार्य को कैसे रोक सकते हैं? उनका परस्पर मिलना क्यों नहीं होता है यह हम आगे चल कर प्राशियन मंत्रिसभा के प्रकरण में ही लिखेंगे। एक और भी कारण है जिससे महामंत्री तथा प्रशियन मंत्रिसभा की पारस्परिक कलह प्राय: रुकी रहती है। महामंत्री प्राय: प्रशियन मंत्रि-सभा का स्वयं नेता होता है। अपने नेता से सभा की कलह प्राय: नहीं हुआ करती है। यहाँ पर एक बात कभी भी न भूलनी चाहिए कि यदि दैवी घटना से सम्राट् के ही हाथ में महामंत्री का कार्य चला जाय तब जर्मन साम्राज्य का कार्यक्रम बदल जायगा तथा सम्राट् की शक्ति उस दशा में बहुत ही अधिक बढ़ जायगी।

प्रशियन मंत्रिसभा का महामंत्री ही नेता होता है यह अभी लिखा जा चुका है। यहाँ पर यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यदि महामंत्री कोई बिस्मार्क जैसा अत्यंत योग्य व्यक्ति हो तो वह साम्राज्य की संपूर्ण शक्ति अपने हाथ में शीघ्र ही कर सकता है; क्योंकि महामंत्री प्रतिनिधि सभा, राष्ट्रसभा, तथा प्राशियन दोनों सभाओं में जा सकता है और वहाँ जा कर बड़ी स्वतंत्रता से बोल सकता है। महामंत्री अधिक योग्यता से यदि इन चारों सभाओं

को अपनी सम्मति पर चला ले तथा अपनी सम्मति को इस प्रकार ढालता रहे कि इन चारों सभाओं की सदा स्वीकृति प्राप्त करता रहे तब उसकी शक्ति अनंत बढ़ सकती है। यह क्यों ? इसका कारण यह है कि सम्राट् तो इन चारों सभाओं में से किसी भी सभा में स्वयं तो जाता ही नहीं है। महामंत्री सम्राट् को इन चारों सभाओं की सम्मति के बारे में जो सुनावे सम्राट् को तो उसी के अनुसार कार्य करना ठहरा। इस प्रकार सम्राट् को अंधकार में रख कर महामंत्री अपनी शक्ति को अनंत सीमा तक बढ़ा सकता है। प्रिंस बिस्मार्क ने जो कुछ किया था वह यही किया था । उसने अपनी बुद्धिमत्ता से प्रशियन मंत्रिसभा की प्रधानी छोड़ कर महामंत्री का पद ग्रहण किया तथा सम्राट् विलियम प्रथम को इस प्रकार प्रभावित किया कि संपूर्ण जर्मन साम्राज्य की बागडोर उसीके हाथ में आ गई। विलियम प्रथम के स्थान पर विलयम द्वितीय जब राज्य पर आया तो उसने बिस्मार्क की चालाकी और बुद्धिमता को जान लिया। उसने एक दम प्रिंस बिस्मार्क से चारो सभाओं की कार्रवाई, मौखिक तौर पर सुनने के स्थान पर लिखित ही देखनी चाही । बिस्मार्क को यह कब अभीष्ट हो सकता था। उसने १८९० में महामंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया।

यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि यदि जर्मनी में सम्राट् के ही हाथ में महामंत्री का पद चला जाय तो उसकी शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ जायगी । अब हम इसी विषय पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

बिस्मार्क के पदत्याग करने पर विलियम द्वितीय ने कैप्रिवि नामक महाशय को महामंत्री बनाया। कैप्रिवि विलियम की सम्मति पर चलनेवाला व्यक्ति था, अतः विलियम ने इसे प्रशियन सभा का प्रधान भी बना दिया। परंतु १८९२ में पाठशाला संबंधी प्रस्ताव पर कुछ झगड़ा हुआ जिससे उसने प्रशियन सभा की प्रधानता छोड़ दी तथा वह एकमात्र महामंत्री के पद पर ही रहा। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि महामंत्री की शक्ति बहुत ही कम हो गई। विलियम ने भी इस समय यह अनुभव कर लिया था कि भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न व्यक्तियों के होने ही से उसकी शक्ति बढ़ सकती है। सभी स्थानों पर बिस्मार्क की तरह एक ही व्यक्ति के हो जाने से उसकी शक्ति पर बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। कैप्रिवि के एकमात्र महामंत्री रह जाने से विलियम की शक्ति बढ़ गई। कैप्रिवि के महामंत्रित्व में बिस्मार्क की बड़ी चतुरता तथा बुद्धिमत्ता से खड़ा किया हुआ सारा का सारा महल मटियामेट हो गया। कोई समय था जब कि बिस्मार्क ही जर्मनी का एकमात्र कर्ता धर्ता था परंतु अब वह दशा न थी। बिस्मार्क ने बहुत अधिक परिश्रम कर के महामंत्री के पद की जो शक्तियाँ बढ़ाई थीं वे सब की सब विलियम की बुद्धिमत्ता से काफूर हो गईं। महामंत्री का प्रतिनिधि सभा में भी वह बल न रहा जो कि उसका उस समय था जब कि वह संपूर्ण साम्राज्य की शक्ति का प्रतिनिधि था। महामंत्री के प्राशिया की प्रधानी छोड़ने से उसकी शक्ति दो स्थानों में

विभक्त हो गई । सम्राट् की शक्ति इस फटाव से बहुत ही अधिक बढ़ गई। इतना होने पर भी यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि सम्राट् साम्राज्य की सभाओं में स्वयं नहीं जा सकता है तथा वह सीधे तौर पर प्रतिनिधियों को प्रभावित करने में सर्वथा असमर्थ है, अतः वह स्वेच्छाचारी नहीं हो सकता है। महामंत्री कैप्रिवि तथा प्रशियन प्रधान पूलन्वर्ग का पारस्परिक विरोध था। १८९४ में यह विरोध यहाँ तक बढ़ा कि उनका परस्पर काम करना असंभव हो गया। सम्राट् ने बुद्धिमत्ता से दोनों को ही पदच्युत कर दिया तथा होहन्लोही शिलिं फर्स्ट को दोनों पदों का अधिकारी बना कर सारे राष्ट्र की बागडोर अपने हाथ में कर ली। प्रिंस बिस्मार्क ने जिस समय दोनों पदों को अपने हाथ में लिया था उस समय उसका उद्देश्य अपनी शक्ति को बढ़ाना था। परंतु विलियम द्वारा महामंत्री को दोनों ही पद दिलवाने से विलियम की शक्ति बढ़ गई। जर्मन शासनपद्धति में सम्राट् के द्वारा महामंत्री का नियत किया जाना जहाँ सम्राट् की शक्ति को बढ़ाता है वहां सम्राट् का, सम्राज्य का संपूर्ण कार्य महामंत्री द्वारा ही कराना उसे स्वेच्छाचारी होने से रोकता है। सम्राट् का महामंत्री के साथ क्या संबंध है यह विस्तृत तौर पर दिखाया जा चुका है। अब हम यह दिखाने का यत्न करेंगे कि साम्राट् का जनता के प्रतिनिधियों के साथ क्या संबंध है।

प्रतिनिधिसभा की सम्मति पर ही सम्राट् को आर्थिक सहायता मिल सकती है, अन्यथा नहीं। यदि सम्राट् प्रतिनिधि सभा की सम्मति पर न चले तो उसे प्रतिनिधिसभा आर्थिक

सहायता देना बंद कर सकती है। धन बिना सम्राट् का साम्राज्य के शासन को करना कितना कठिन है यह किसीसे छिपा नहीं है, परंतु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि जर्मन-प्रतिनिधि सभा में सभ्य परस्पर बहुत से दलों में विभक्त हैं। इस दशा में प्रतिनिधि सभा का सम्राट् को अपनी इच्छा पर चला लेना बहुत कुछ कठिन है । क्योंकि सम्राट् कुछ दलों को अपनी ओर कर के जो चाहे कर सकता है तथा आर्थिक सहायता भी पर्याप्त तौर पर प्राप्त कर सकता है । सारांश यह है कि जर्मनी में सम्राट् की शक्ति लोक-सभा के दलों पर निर्भर रहती है अतः इसका इतिहास भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है ।

भिन्न भिन्न जर्मन दलों का इतिहास ।

जिस समय बिस्मार्क को १८६२ में प्रशियन मंत्रिसभा की प्रधानता प्राप्त हुई उस समय प्रतिनिधिसभा में दो मुख्य दल थे। प्रथम दल संकुचित विचारों का और द्वितीय दल उदार विचारों का था। सैडोवा में बिस्मार्क की चालाकी से आस्ट्रिया पर जर्मनी की विजय द्वारा जर्मन-राजनीति में बड़ा परिवर्त्तन हो गया । संकुचित दल के कुछ व्यक्ति उन्नति के प्रेमी थे, अतः वे अपने दल को छोड़ कर एक नए दल के निर्माण के कारण हुए जिसका नाम उन्होंने 'स्वतंत्र संकुचित दल' रखा । उदार दल के भी कुछ लोग उस दल को छोड़ कर अपने आपको 'जातीय उदार दल' के नाम से उद्घोषित करने लगे । यह दल बिस्मार्क

का अतिशय भक्त था। इस प्रकार जर्मनी में सैडोवा के युद्ध के अनंतर चार दल हो गए।

(१) संकुचित दल
(२) स्वतंत्र संकुचित दल
(३) उदार दल
(४) जातीय उदार दल

ये चार ही दल जर्मनी में होते तब भी कोई बात न थी, परंतु वहाँ तो समय के साथ साथ और दल बढ़ गए जिनका वर्णन कर देना अत्यंत आवश्यक प्रतीत होता है। जर्मनी में मध्य-दल नाम का एक पाँचवाँ दल भी है। इस दल के व्यक्ति पोप के अत्यंत पक्षपाती हैं। कैथोलिक धर्म के लोग ही इसके विशेषत: सभ्य हैं। साम्राज्य ने पोप के विरुद्ध कई एक नियम पास किए थे, भला उनको यह कब सहन हो सकता था जिनके लिये पोप ईश्वर का एक प्रतिनिधि सा हो। इस दल के विषय में कुछ लिखने से पहले एक दल का हम और उल्लेख कर देना आवश्यक समझते हैं जो कि 'सामाजिक प्रतिनिधि-सत्तात्मक दल' के नाम से प्रसिद्ध है। पहले पहल इस दल के व्यक्तियों की संख्या अति न्यून थी, परंतु अब इनकी संख्या अत्यंत अधिक बढ़ गई है। इसमें बड़े बड़े नगरों के वर्त्तमान-कालीन जर्मन-शासन से असंतुष्ट व्यक्ति सम्मिलित हैं। इन्हें बहुत बार जनता तथा राज्य की ओर से देश का शत्रु भी कहा जाता है। बिस्मार्क जब पहले पहल महामंत्री बना था उसने जातीय उदार दल तथा स्वतंत्र संकुचित

दल को अपने पक्ष में कर लिया था, तथा शेष दोनों संकुचित और उदार दल उसके विरुद्ध थे।

परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि जर्मनी में इंगलैंड के सदृश 'दल' की शैली नहीं है। जर्मनी में बिस्मार्क के पक्षपाती दल के व्यक्ति कई अवसर पर उसके प्रस्तावों का विरोध कर बैठते थे तथा कई एक अवसर पर उसके विपक्षी उसका पक्ष भी ले लेते थे। आस्ट्रिया से युद्ध के बंद होते ही बिस्मार्क ने जर्मनी को उन्नत करनेवाले प्रस्ताव पास कराने प्रारंभ किए तथा शनैः शनैः प्राचीन मंत्रियों को एक एक कर के हटा कर उदार दल के मंत्रियों को वह नियत करता चला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत समय तक उसका कार्य बे रोक टोक होता गया। अंतिम दिनों में बिस्मार्क का मध्य दलवालों से झगड़ा हुआ जिससे दोनों ही ने एक दूसरे को तंग करने में कोई कसर न रखी।

जर्मन-राज्य तथा कैथोलिक मतानुयायियों के बीच में झगड़े का आरंभ १८६९ से हुआ। १८७० में कैथोलिकों ने प्रतिनिधिसभा में अपने बहुत से सभ्य भेज दिए तथा १८७१ में उन्होंने सम्राट् के पास यह प्रार्थनापत्र भेजा कि वे पोप की प्रधानता को अवश्यमेव मानें। इस प्रार्थनापत्र के भेजने के पंद्रह दिन बाद जो प्रतिनिधि सभा का चुनाव हुआ उसमें इन्होंने लगभग अपने साठ सभ्य भेज दिए। इन सभ्यों ने प्रतिनिधि सभा में पहुँचते ही यह उद्घोषित किया कि सम्राट् के प्रति जो अभिनंदन-पत्र पढ़ा

जायगा उस पर वे लोग अपनी सम्मति न देंगे क्योंकि उसमें पोप के विरुद्ध कुछ बातें लिखी हुई हैं। १८७१ में इन लोगों से राज्य का झगड़ा बढ़ गया और राज्य ने भी इनके प्रति एक नया रूप धारण कर लिया। ववेरिया के राष्ट्र ने राष्ट्रसभा में पादरियों की बुराइयों से जनता को बचाने के लिये एक प्रस्ताव पास किया। यह प्रस्ताव प्रधिनिधिसभा में भी पास हो गया। अब क्या था। इस प्रस्ताव के पास हो जाने के अगले वर्ष ही प्रशिया के एक विद्यालय ने अपने यहाँ के विद्यार्थियों को इन पादरियों के प्रभाव से बचाने का यत्न किया। इस घटना के कैथोलिक पादरियों के कान तक पहुँचते ही उनके क्रोध की कोई सीमा न रही। फल्दा नामी स्थान पर सब पादरी एकत्रित हुए तथा उन्होंने उस नियम के विरुद्ध अपनी अपनी सम्मतियाँ प्रगट कीं। पोप ने भी इस अवसर पर इन्हें पूर्ण सहायता दी। बिस्मार्क ने भी इन लोगों से झगड़ा करने को अपने आपको खूब तैयार किया। १८७२ की जून में उसने एक राज्यनियम पास करवाया जिसके अनुसार कैथोलिक मतानुयायियों के कुछ संघों को साम्राज्य से बाहर निकाल दिया गया। इसी वर्ष की मई में प्रशिया की जातीय सभा ने एक नियम द्वारा पादरियों की शक्ति को सर्वथा ही दमन कर दिया तथा उनके बालकों की शिक्षा को राज्य ने अपने हाथ में ले लिया। इन सब घटनाओं से तंग होकर कैथोलिक पादरी पुनः फल्दा नामी स्थान पर एकत्रित हुए तथा सभों ने मिल कर प्रशिया के नए नियम को दूषित ठहराया और उसके विरुद्ध चलने का

आपस में उन्होंने निश्चय कर लिया। इसी अवसर पर पोप का एक पत्र भी उन्हें मिला जिसमें लिखा था कि पादरियों के विरुद्ध राज्य के संपूर्ण नियम परमात्मा की इच्छा के विरुद्ध हैं। राज्य को जब इस पत्र की सूचना मिली राज्य आपे से बाहर हो गया तथा प्राशिया की जातीय सभा ने पाँच अन्य कठोर नियम इनके विरुद्ध पास किए जिनमें से एक नियम यह था कि पादरियों को राज्यकोष से एक पाई न दी जाय जब तक कि वे लोग राज्यनियमों पर चलने की शपथ न खा लेवें।

इन सब कठोर नियमों के बनाने पर भी राज्य को पूर्ण सफलता न प्राप्त हो सकी। क्योंकि १८७४ के चुनाव में पादरियों ने प्रतिनिधि सभा में अपने १०० सभ्य भेज दिए। इसी प्रकार प्राशिया की प्रतिनिधिसभा में भी उन्होंने अपने पर्याप्त सभ्य भेज दिए। यह तो हुई मध्य दल की बात। इसी प्रकरण में संकुचित दलवालों पर भी मैं कुछ लिख देना आवश्यक समझता हूँ। मध्यदल के दबाने के लिये जो कठोर नियम बनाए गए थे उनका कुछ कुछ प्रभाव संकुचित दलवालों पर भी जा कर पड़ा। १८७२ में प्रशिया के विद्यालयों में जो राज्यनियम काम में लाए गए उनसे कैथोलिक के सदृश ही प्रोटैस्टैंटों का प्रभाव भी उन विद्यालयों पर से बहुत कुछ हट सा गया था। परिणाम इसका यह हुआ कि मध्य दल के सदृश ही संकुचित दलवाले भी बिस्मार्क से विरुद्ध हो गए। सम्राट् की सहानुभूति भी बहुत कुछ संकुचित दलवालों के ही साथ थी। इन सब घटनाओं के होते हुए भी बिस्मार्क

की स्थिति में अंतर नहीं पड़ सका था क्योंकि स्वतंत्र संकुचित दल, उदार दल तथा जातीय उदार दल के लोग उसके साथ थे और सम्राट् का भी उसी पर पूरा विश्वास था। १८७५ में बिस्मार्क ने 'राजकीय रेलों' संबंधी प्रस्ताव पेश किया। परंतु राष्ट्रसभा के घोर विरोध से वह गिर गया क्योंकि इससे भिन्न भिन्न राष्ट्रों की रेलवे कंपनियों को धक्का पहुँचता था। इस दशा में बिस्मार्क ने प्रशिया पर ही अपनी इच्छाओं को पूर्ण किया तथा प्रशिया की संपूर्ण रेलें भिन्न भिन्न कंपनियों से खरीद कर राजकीय कर दीं। अन्य राष्ट्रों से उसने इस विषय पर छेड़ छाड़ करनी सर्वथा बंद कर दी। इसी प्रकार बिस्मार्क का आर्थिक मामलों पर भिन्न भिन्न दलवालों से झगड़ा हुआ तथा उसके प्रस्ताव पास नहीं किए गए। अंत में तंग आ कर १८७७ में बिस्मार्क ने इस्तीफा दे दिया। परंतु जब सम्राट् ने यह स्वीकृत न किया तब बिस्मार्क ने अपनी नीति बदल दी। उसने साम्राज्य की समृद्धि को बढ़ाने के लिये बाधित व्यापार की नीति का अवलंबन करना सोचा। १८७९ में राष्ट्रसभा द्वारा बाधित व्यापारसंबंधी प्रस्ताव तैयार करा कर बिस्मार्क ने प्रतिनिधि सभा में भेजा तथा बड़ी चतुरता से उसे पास करा लिया। धर्मसंबंधी कठोर राज्यनियम भी उसने हलके करने प्रारंभ कर दिए। १८८७ में बिस्मार्क ने अगले सात वर्षों के लिये सेना की संख्या नियत करवाने का एक प्रस्ताव तैयार किया। परंतु यह प्रस्ताव मध्यम दल के विरोध से पास न हो सका, अतः बिस्मार्क ने सम्राट् से आज्ञा ले कर प्रतिनिधि सभा को पुनः नए सिरे से चुनाव के

लिये कहा। दैवी घटना से उसी समय सम्राट् विलियम मर गया। १८६६ के युद्ध से पूर्व जर्मन समृद्ध न थे, न उनका व्यापार व्यवसाय ही बहुत बढ़ा हुआ था। परंतु उसके अनंतर उनकी आर्थिक उन्नति होने लगी। जनता का धन से प्रेम बहुत ही अधिक बढ़ गया। इन्हीं कारणों से समष्टिवादियों से भी जनता भय करने लगी। बिस्मार्क ने भी समाष्टिवादियों को दबाना चाहा परंतु दिन पर दिन उनकी संख्या प्रतिनिधि सभा में बढ़ती ही चली गई।

सन्				प्रतिनिधि सभा में समाष्टिवादियों की संख्या।
१८७१	...	...	...	३
१८७४	...	...	...	९
१८७७	...	...	...	१३
१८७८	...	...	...	९
१८८१	...	...	...	१२
१८८४	...	...	...	२४
१८९०	...	...	...	३५
१८९३	...	...	...	४४

१८९० में बिस्मार्क ने इन समाष्टिवादियों के विरुद्ध प्रतिनिधि सभा में नियम पास कराने चाहे परंतु "सम्राट् इन नियमों के विरुद्ध हैं" यह किंवदंती उड़ जाने से वे नियम वहाँ पास न हो सके। नवीन सम्राट् विलियम द्वितीय उमंगपूर्ण था और संपूर्ण साम्राज्य की बागडोर अपने ही हाथ में रखना चाहता था तथा महामंत्री की शक्ति को वह बहुत

ही घटा देना चाहता था । बिस्मार्क को यह कब सहन हो सकता था । सम्राट् ने बिस्मार्क से सभाओं की लिखित कार्रवाई माँगी परंतु बिस्मार्क ने ऐसा करना मंजूर नहीं किया— यह पूर्व लिखा ही जा चुका है। परिणाम इसका यह हुआ कि बिस्मार्क ने इस्तीफा दे दिया और सम्राट् ने उसे मंजूर कर लिया।

बिस्मार्क के अध:पतन से जर्मन राजनीति ने बड़ा भारी पल्टा खाया। साम्राज्य की बागडोर महामंत्री के हाथ से सम्राट् के हाथ में चली गई। बिस्मार्क के स्थान पर कैप्रिवि को महामंत्री बनाया गया। यह पुरुष सैनिक था न कि राजनीतिज्ञ। इसने सम्राट् की इच्छा के अनुसार ही कार्य करना प्रारंभ किया। अगली सभा में सेना की संख्या बढ़ाने का प्रस्ताव पास हुआ परंतु उसके दूसरे वर्ष ही प्रतिनिधि सभा में एक प्रस्ताव तैयार किया गया जिसके अनुसार सेना के अधिकारियों की तनखाहें कम हो जाती थीं। कैप्रिवि को यह कब अभीष्ट हो सकता था। उसका उदारदलवालों से झगड़ा खड़ा हो गया। सम्राट् विलियम द्वितीय अति चतुर तथा अति योग्य व्यक्ति था। उसने मध्यदलवालों को, चर्चसंबंधी कुछ एक कठोर नियमों को शिथिल करके अपने साथ कर लिया। १८९२ तक सम्राट् अपनी इच्छाओं को बे रोक टोक पूरा करवाता रहा। परंतु १८९२ में एक विचित्र घटना हो गई। सम्राट् विलियम धर्म का पक्षपाती था, उसे अधार्मिक विश्वासों से घृणा थी अत: उसने बालकों की शिक्षा में ईसाई पादरियों का हस्तक्षेप होना उचित समझा और

इस कार्य के संपादन के लिये उसने प्रतिनिधि सभा में पास करवाने के लिये एक प्रस्ताव तैयार करवाया। यह प्रस्ताव पास हो जाता परंतु जर्मनी के संपूर्ण पत्रों ने बड़े जोर शोर से इस प्रस्ताव के विरुद्ध आवाजें उठाईं। परिणाम इसका यह हुआ कि सम्राट् ने प्रस्ताव लौटा लिया तथा प्रतिनिधि सभा में पास होने के लिये न भेजा। इस घटना से राज्य की शक्ति तथा प्रभाव पर कितना धक्का लगा होगा यह सब ही समझ सकते हैं। इस घटना पर शिक्षाविभाग के मंत्री ने तो इस्तीफा ही दे दिया। इसके कुछ ही समय के बाद सेना संबंधी प्रस्ताव भी प्रातिनिधि सभा में पास न हुआ परंतु दैवी घटना से प्रतिनिधि सभा के पुनः नए सिरे से चुन कर आए हुए सभ्यों ने वही प्रस्ताव कुछ परिवर्तनों के साथ पास कर दिया जिससे राज्य का प्रभाव कुछ कुछ पुनः प्रतीत होने लगा।

जर्मनी में प्रतिनिधि सभा में बहुत से दल हैं और वे प्रायः एक दूसरे से भी कलह करते रहते हैं। इससे राज्य-कार्य में बड़ी कठिनता होती है। वर्तमान कालीन प्रतिनिधि सभा में जो भिन्न भिन्न दलों के सभ्यों की संख्या है उसे हम नीचे देते हैं।

दल		संख्या	अंग्रेजी नाम
जर्मन संकुचित दल	...	७२	German Conservatives
जर्मन रीजकाय दल	...	२६	German Imperial Party
जातीय उदार दल	...	५३	National Liberals
विरोधी सैमिटिक्स	...	१६	Anti-Semitics

दल	संख्या	अंग्रेजी नाम
मध्य दल	९६	Centre
स्वतंत्र विचारक संघटन	१३	Free-thinking Union
स्वतंत्र विचारक जनतादल	२३	Free-thinking People's Party
दक्षिणीय जर्मन जनतादल	११	South German People's Party
बवेरिया कृषक संघटन	४	Bavarian Peasants' Union
सामाजिक प्रतिनिधि-सत्तात्मक दल ...	४४	Social Beaurocrats
पोल्स	१९	Poles
अलासेस लोरेनर्स ...	८	Alsace Lorrainers
गल्फ्स ...	७	Guelphs
स्वतंत्र दल ...	४	Independents
डेन	१	Dane



चौथा परिच्छेद ।

प्रशिया ।

जर्मन राष्ट्रसंघटन में प्रशिया की क्या शक्ति है यह पूर्व ही विस्तृत तौर पर दिखाया जा चुका है । जर्मन शासन-पद्धति का ज्ञान बिना प्रशियन शासनपद्धति के ज्ञान के असंभव है । अतः अब कुछ शब्द इसी पर लिखे जाँयगे ।

प्रशियन शासन-पद्धति का उद्भव।

१८४८ की जर्मन क्रांति के अनंतर १८५० की ३१ जनवरी को राजा ने प्रशिया की वर्त्तमान कालीन शासनपद्धति को स्वीकार किया । अब तक भी प्रशियन उदार दलवालों की यह सम्मति है कि उनकी शासनपद्धति में वह स्वातंत्र्य नहीं है जो कि वे चाहते हैं । यह क्यों ? इसका कारण यह है कि जाति में जब यह शासन-पद्धति प्रचलित की गई उस समय उसमें वह शक्ति न थी जिससे वह राजा को किसी कार्य के लिये विशेष तौर पर बाधित कर सकती । विचित्रता तो यह है कि प्रशियन शासनपद्धति में जो नियम-धाराएँ हैं, प्रजा के निःशक्त होने से राज्य उन पर भी कार्य नहीं करता है तथा बहुत सी बातों में स्वेच्छाचारी है । दृष्टांत के तौर पर शासनपद्धति के अनुसार जनता की शिक्षा में राजा का हाथ नहीं हो सकता है, परंतु चिर काल से इस विषय में जनता ने कुछ भी ध्यान न दिया तथा इस विषय में कोई नियम तक न बनाया । परिणाम यह हुआ कि अभी तक प्रशिया में राजा की आज्ञा

के बिना एक भी जातीय विद्यालय नहीं खोला जा सकता है। यद्यपि खुले मैदान बहुत से निःशस्त्र मनुष्य एकत्रित हो सकते हैं परंतु अभी तक प्रत्येक समिति के लिये जनता को पुलिस को सूचना देनी पड़ती है। सब से अधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि पुलिस प्रत्येक प्रकार की समिति में कार्रवाई सुनने के लिये जा सकती है और जिस समिति को चाहे बर्खास्त भी कर सकती है। इन सब बातों से जातीय सभा से ले कर प्रत्येक नागरिक समिति तक राज्य के अधिकारों से अपने आपको स्वरक्षित करने में बहुत कुछ असमर्थ है। इसमें संदेह नहीं है कि स्थानीय स्वराज्य (Local-self Government) तथा न्यायालयों के कारण कुछ स्वतंत्रता बढ़ाई गई है परंतु वास्तव में तो जनता की वैयक्तिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रता बहुत कुछ प्रतिबद्ध सी ही है। प्रशियन शासनपद्धति की नियम-धाराओं के अनुसार जातीय सभा तथा राजा द्वारा नियम शीघ्र ही बनाए जा सकते हैं। यहाँ पर यह बात अवश्यमेव स्मरण रखनी चाहिए कि किसी प्रस्ताव के राज्यनियम बनने के लिये वहाँ दो बार सम्मतियाँ ली जाती हैं जिनका कि पारस्परिक अंतर २१ दिन का होता है।

प्रशियन राष्ट्र का अधिपति राजा ही समझा जाता है यद्यपि शासनपद्धति के अनुसार उसकी शक्ति बहुत कुछ परिमित है। राजा का उत्तराधिकारी

राजा। उसी के वंश का कोई पुरुष होता है। प्रशिया में स्त्री राज्य पर नहीं बैठ सकती है। राज्यनियम

के बनने के लिये जातीय सभा की स्वीकृति आवश्यक है और राजा के हस्ताक्षर भी होने आवश्यक हैं। राज्याधिकारियों को नियत करना प्रूशिया के राजा के हाथ में है। राजा ही वहाँ भिन्न भिन्न व्यक्तियों को मानसूचक उपाधियाँ दिया करता है।

प्रूशिया की शासनपद्धति के अनुसार राजा के प्रत्येक कार्य पर किसी न किसी मंत्री के हस्ताक्षर का होना आवश्यक है। मंत्री ही पर राजा के कार्यों का उत्तरदातृत्व है। परंतु यहाँ पर इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मंत्रियों का उपरिलिखित उत्तरदातृत्व राजा के ही प्रति है न कि प्रजा के प्रति। प्रूशियन मंत्रियों तथा उनके प्रतिनिधियों को राज्य की दोनों सभाओं में बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता है। मंत्रि लोगों के प्रति सभाओं की विरुद्ध सम्मति भी हो जाय तो भी वे लोग अपना पद त्याग नहीं करते हैं। यह इसीलिये है कि मंत्री लोग राजा के कर्मचारी होते हैं न कि प्रजा के। देशद्रोह, घूस, तथा शासनपद्धति के अतिक्रमण संबंधी कोई भी दोष यदि सभा में मंत्रियों पर लगाए जांय तो उनको दंड मिल सकता है। परंतु दंड क्या दिया जाय यह शासनपद्धति की नियमधाराओं में नहीं लिखा हुआ है, अतः अभी तक इस पर कोई भी कार्रवाई नहीं हुई है। इन सब स्वतंत्रताओं के होते हुए भी आय-व्यय समिति द्वारा प्रूशियन मंत्रियों पर पर्याप्त बाधा लगाई हुई है। आय-व्यय समिति के सभ्य न्यायाधीशों के सदृश मंत्रियों के शासन की सीमा से

मंत्रिसभा।

बाहर हैं। इस समिति का कार्य राजकीय भिन्न भिन्न विभागों के आय व्यय का निरीक्षण करना है तथा उसकी सूचना जातीय सभा को देना है। इस दशा में जातीय सभा यदि किसी भी विभाग को अधिक धन देना न मंजूर करे तब इस विषय में मंत्री को दबना पड़ता है और यह मंत्रियों पर पर्याप्त बाधा है। इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार की बाधाओं का शासनपद्धति में कोई भी वर्णन नहीं है, परंतु इसका भुलाया जाना भी कठिन ही प्रतीत होता है जब कि मंत्रियों की शक्ति को कम करनेवाली एक मात्र यही हो।

प्रशियन मंत्रियों का आपस में मेल नहीं है यह पहले लिखा जा चुका है। प्रशियन मंत्रिसभा के प्रधान मंत्री को अपने साथियों पर एक भी अधिकार नहीं प्राप्त है और न वह अपने विचारों पर दूसरे मंत्रियों को चलने के लिये बाधित कर सकता है। प्रशियन मांत्रिसभा की अंग्रेजी मंत्रिसभा से कुछ भी सदृशता नहीं है। जिस समय देश पर विपत्ति पड़ी हो और प्रतिनिधि सभा की बैठक न हो, उस समय मंत्रिसभा अस्थिर रूप से नवीन नियमों को बना सकती है तथा देश में उन्हें प्रचलित कर सकती है। परंतु प्रतिनिधि सभा की बैठक के आरंभ होते ही मंत्रिसभा का यह कर्त्तव्य है कि वह उन नियमों को पास करवा कर स्थिर बना लेवे। कुछ अन्य ऐसे और अवसर हैं जिनमें इसे विशेष अधिकार प्राप्त हैं। दृष्टांत के तौर पर किसी नगर या देश पर घेरा डालने की यह उद्घोषणा कर सकती है। १८१४ तथा १८१७

की नियम-धाराओं के अनुसार सामायिक प्रश्नों पर विचार करने के लिये इसका साप्ताहिक अधिवेशन होना अत्यंत आवश्यक है। मंत्रिसभा में बहुसम्मति से पास हुई किसी बात पर मंत्रियों का चलना आवश्यक नहीं है। इस प्रकार के कार्य से केवल एक ही लाभ होता है, वह यह कि राजा को यह सूचना मिल जाय कि अमुक अमुक बातों पर मंत्रियों की बहुसंख्या की क्या सम्मति है। प्राशिया में मंत्रि लोग एक दूसरे के अधीन नहीं हैं। वे अपनी ही सम्मति पर सदा काम किया करते हैं। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि प्रशियन मंत्री एकमात्र राजा के ही प्रति उत्तरदायी हैं। राजा जिस मंत्री से असंतुष्ट होता है उसे पृथक् कर देता हैं। राजा को क्या आवश्यकता पड़ी है कि इंगलैंड के सदृश एक मंत्री के कारण सारे के सारे मंत्रियों को ही पृथक् कर दे। राजा मंत्रियों को उनकी शासन की शक्ति के कारण चुनता है, न कि विचार की शक्ति के कारण। प्रशियन मंत्री लोग अपने पैरों पर आप खड़े रहते हैं। उन्हें किसी दूसरे के अपराध के कारण स्वयं गिरना नहीं पड़ता। इस समय कुल मिला कर ५ विभाग हैं जिन के ९ ही मंत्री हैं।

(१) विदेशीय विभाग
(२) अंतरीय विभाग
(३) व्यापार व्यवसाय विभाग
(४) राष्ट्रीय कार्य विभाग
(५) कृषि, राष्ट्र, तथा जंगल विभाग
(६) न्याय विभाग

(७) धर्म, शिक्षा तथा स्वास्थ्य विभाग
(८) आय व्यय विभाग
(९) युद्ध विभाग

प्रशियन शासनपद्धति की आय-व्यय समिति तथा आर्थिक समिति का कार्य ध्यान देने योग्य है अतः अब उसी पर कुछ लिखा जायगा।

आय-व्यय समिति के सभ्यों को न्यायाधीशों के सदृश ही अधिकार प्राप्त है यह मैं अभी लिख चुका हूँ। राष्ट्रीय मंत्रि-सभा की सम्मति के अनुसार राजा आय-व्यय समिति के प्रधान को चुन लिया करता है। प्रधान जिन जिन व्यक्तियों को निर्देश करता है उन्हीं व्यक्तियों को राजा आय-व्यय समिति के सभ्य के तौर पर चुन लिया करता है। यह समिति सीधे तौर पर राजा के प्रति ही जिम्मेवार है। मंत्रिसभा से इसका उत्तर-दातृत्व संबंधी कुछ भी संबंध न समझना चाहिए। यह समिति ही राज्य के संपूर्ण विभागों के आय व्यय की पड़ताल किया करती है तथा संपूर्ण कार्य की सूचना प्रतिनिधि सभा में भेज दिया करती है। यह तो हुआ आय-व्यय समिति का कार्य; अब हम आर्थिक समिति के कार्य पर भी एक दो शब्द लिख देना आवश्यक समझते हैं। भिन्न भिन्न धन संबंधी राज्यनियमों का जाति की आर्थिक दशा पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका देखना इस समिति का कार्य है। आर्थिक मामलों में प्रशिया को साम्राज्य की राष्ट्रसभा में किस ओर अपनी सम्मति देनी चाहिए इसका निर्णय भी यही किया करती है। राजा के पास

आय व्यय समिति तथा आर्थिक समिति।

आर्थिक प्रस्ताव भेजने से पूर्व वे इस समिति के पास भेजे जाते हैं। इस समिति का कार्य एकमात्र सलाह देना ही कहा जा सकता है। इसके बहुत से सभ्य पाँच वर्ष के लिये राजा द्वारा नियत किए जाते हैं और ४५ सभ्य देश की भिन्न भिन्न व्यापारिक व्यावसायिक समितियों द्वारा चुन कर आते हैं।

जातीय सभा तथा राजा मिल कर राज्यनियम को प्रशिया में बना सकते हैं यह पूर्व ही लिखा जा चुका है। जातीय सभा लार्ड सभा तथा प्रतिनिधि सभा को मिला

जातीय सभा।

कर कहा जाता है। प्रायः ये दोनों सभाएँ अपने अधिवेशन पृथक् पृथक् ही किया करती हैं। परंतु यदि कोई आवश्यक कार्य आ पड़े तब ये दोनों सभाएँ जाति सभा के रूप में परस्पर मिल कर भी अपने अधिवेशन कर लेती हैं। दृष्टांत के तौर पर राजा यदि पागल या बालक हो उस दशा में जातिसभा ही राजा के स्थान पर किसी एक व्यक्ति को राज्यकार्य चलाने के लिये नियत कर दिया करती है। वर्ष में जातीय सभा का एक बार बैठना आवश्यक है। राजा जब चाहे तब जातीय सभा को दूसरी बार चुनाव के लिये प्रेरित कर सकता है। जातीय सभा के सभ्यों का चुनाव जब जब राज्य के अनुकूल न हुआ तब तब राजा ने ऐसा ही किया है।

जातीय सभा की नियामक शक्ति अति विस्तृत है। कोई भी नियम राज्यनियम नहीं हो सकता है जब तक कि जातीय सभा की स्वीकृति न हो। वार्षिक आय व्यय, कर, जातीय ऋण आदि के विषय में इसकी स्वीकृति अत्यंत आवश्यक है। आस्ट्रिया से प्रशिया के युद्ध के समाप्त होने के बाद से अब तक

कोई भी राजकीय व्यय जातीय सभा की स्वीकृति के बिना नहीं हुआ है। जातीय सभा अपनी ओर से भी प्रस्ताव पेश कर सकती है परंतु प्रायः मंत्री लोग ही ऐसा करते हैं। मंत्री लोग प्रस्ताव के अस्वीकृत होने से इतना नहीं डरते जितना कि जातीय सभा द्वारा उसके सुधारने से। प्रायः जातीय सभा का संपूर्ण कार्य राजकीय प्रश्नों का विचारना तथा सुधारना ही कहा जा सकता है।

जातीय सभा का शासन पर प्रभाव बहुत ही न्यून है। जातीय सभा शासकों के कार्य के निरीक्षण के लिये अपनी 'निरीक्षक समिति' बैठा सकती है परंतु साथ ही राज्य अपने शासकों को यहाँ तक रोक सकता है कि वे निरीक्षक समिति को किसी बात की भी सूचना न दें। मंत्रियों का कथन है कि जातीय सभा की अन्य समितियों के सदृश निरीक्षक समिति का भी उनसे कोई संबंध न होना चाहिए। सारांश यह है कि भिन्न भिन्न विभागों के शासन पर जातीय सभा अपनी सम्मति प्रगट कर सकती है, जिसका कि वास्तविक प्रभाव कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। जातीय सभा की दोनों ही सभाएँ अपने अपने प्रधान को अपने आप चुनती हैं। जर्मन राष्ट्रसंघटन की जातीय सभा के सदृश ही इसकी बहुत सी बातें हैं। उसी के सदृश इसको भी समझना चाहिए।

प्रशियन प्रतिनिधि सभा में सभ्यों की संख्या लगभग ४३३ है। संपूर्ण प्रशिया जिलों में विभक्त है जिनमें से प्रत्येक जिले में प्रतिनिधि सभा के सभ्य चुननेवालों की संख्या नियत है। ३० वर्ष की उमर से अधिक उमरवाला व्यक्ति ही प्रतिनिधि के तौर

प्रतिनिधि सभा।

पर चुना जा सकता है। चुननेवालों के अपनी अपनी संपत्ति के अनुसार तीन विभाग हैं। जो जो व्यक्ति संपूर्ण कर का $\frac{1}{3}$ भाग देते हैं वे प्रथम श्रेणी में गिने जाते हैं। अवशिष्ट $\frac{1}{3}$ भाग जो व्यक्ति कर में देते हैं वे द्वितीय श्रेणी में गिने जाते हैं, इसी प्रकार जो बचा हुआ तिहाई भाग कर में देते हैं वे तृतीय श्रेणी के व्यक्ति कहे जाते हैं। प्रत्येक श्रेणी कुल सभ्यों का $\frac{1}{3}$ स्वयं चुनती है। इस प्रकार श्रेणियों द्वारा चुने हुए व्यक्तियों को राज्य की ओर से यह अधिकार प्राप्त है कि वे प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव करें। जब किसी सभ्य का प्रतिनिधि सभा में स्थान रिक्त हो जाता है तब प्रतिनिधि सभा उसके स्थान पर किसी व्यक्ति को स्वयं नहीं चुनती है अपितु उन चुननेवालों को ही सूचना भेज देती है। वे ही चुन कर प्रतिनिधि सभा में सभ्य को भेजते हैं। यह चुनने का नवीन नियम १८४९ में प्रशिया में आरंभ किया गया था। इस रीति से संपत्तिवालों को विशेष अधिकार प्राप्त हैं और निर्धन तथा दरिद्रों के अधिकार भी छीने नहीं गए हैं। धनिक संख्या में न्यून होते हैं पर वे कर भी अधिक ही देते हैं। प्रशिया के गाँवों तथा नगरों में चुनाव की यही विधि प्रचलित है। लोगों का इस विधि पर यह आक्षेप है कि इसके द्वारा प्रतिनिधि सभा में जनता के प्रतिनिधि नहीं पहुँचते हैं अपितु भिन्न भिन्न श्रेणियों के। कुछ भी हो। कई विदेशियों ने इस विधि को पसंद किया है क्योंकि इस विधि द्वारा चुननेवाले मनुष्य ही रहते हैं न कि स्थान। परंतु इसमें संदेह भी नहीं है कि जहाँ इस विधि के

लाभ हैं वहाँ हानियाँ भी पर्याप्त हैं। सब से बड़ी हानि तो यही कही जा सकती है कि इस विधि द्वारा धनिक तथा निर्धनों का कलह अनंत सीमा तक बढ़ जाता है जो कि किसी भी जाति को अभीष्ट नहीं हो सकता है।

प्रशियन लार्ड सभा के सभ्य प्राय: बड़े बड़े राज्याधिकारी, तालुकेदार, राजवंशीय लोग तथा अन्य इसी प्रकार के राज्य द्वारा सम्मानित व्यक्ति हुआ करते हैं। तीस वर्ष की आयु से अधिक आयुवाले ही लार्ड सभा के सभ्य बन सकते हैं। १८५७ में इस सभा के सभ्यों की संख्या लगभग ३०० थी। इनमें से १०० के लगभग तालुकेदार थे और १०० ही तालुकेदारों के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि भी थे। सारांश यह कि लार्ड सभा के अधिक सभ्य प्राय: तालुकेदारों में से ही आते हैं। ये लोग राज के अतिशय भक्त होते हैं और उन्हें देश में बहुत सुधार भी पसंद नहीं है। आयव्यय संबंधी बजट तथा इससे संबंध रखनेवाले अन्य सब प्रस्ताव पहले पहल प्रतिनिधि सभा में ही पास होते हैं तथा वहाँ से पास होकर लार्ड सभा में भेजे जाते हैं। लार्ड सभा को उन प्रस्तावों में सुधार का अधिकार प्राप्त नहीं है। लार्ड सभा जो कुछ नियमानुसार कर सकती है वह यही है कि उन्हें चाहे पास करे, चाहे न पास करे परंतु वास्तव में लार्ड सभा के सभ्य उन प्रस्तावों में बड़ी स्वतंत्रता से काट छाँट करते हैं।

लार्ड सभा।

पाँचवाँ-परिच्छेद ।

अमेरिका ।

अमेरिका की राष्ट्रसभा संसार के अन्य सब सभ्य देशों की राष्ट्रसभाओं की अपेक्षा अधिक ध्यान देने योग्य है।

अमेरिकन राष्ट्रसभा । Senate.

महाशय ब्राइस की सम्मति में तो अमेरिकन शासनपद्धति के निर्माताओं की बुद्धि की यह अनुपम तथा अद्भुत कृति है। जो कुछ भी हो, इसमें संदेह नहीं कि अमेरिका की राष्ट्रसभा ने अपना कार्य बहुत कुछ सफलता से किया है। अमेरिकन शासनपद्धति की तृतीय धारा में लिखा हुआ है कि– 'अमेरिका की राष्ट्रसभा में प्रत्येक अमेरिकन राष्ट्र की ओर से दो सभ्यों का आना आवश्यक है। इन सभ्यों को उस राष्ट्र के नियमनिर्माताओं तथा शासकों ने चुना हो न कि प्रजा ने। राष्ट्रसभा के प्रत्येक सभ्य को एक से अधिक सम्मति देने का अधिकार नहीं होगा'। आगे चल कर उसी शासन-पद्धति में यह भी लिखा हुआ है कि–'राष्ट्रसभा के सभ्यों का एक तिहाई भाग प्रति दूसरे वर्ष बदलता रहेगा। ३० वर्ष से न्यून आयुवाले, अमेरिका में न रहनेवाले तथा भिन्न राष्ट्र के निवासी व्यक्ति को राष्ट्र सभा का सभ्य चुन कर नहीं भेजा जा सकता है।'

यहाँ पर यह एक बात लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि अमेरिकन शासनपद्धति के निर्माताओं का राष्ट्रसभा के निर्माण में उद्देश्य जनता के प्रतिनिधियों को भेजना न था,

उनका जो कुछ विचार था वह यह था कि इसमें भिन्न भिन्न राष्ट्रों के नियमनिर्माताओं तथा शासकों के ही प्रतिनिधि आवें। अमेरिका के राजनैतिक प्रबंध तथा शासन में वहां की राष्ट्र-सभा ही मुख्य है। भिन्न भिन्न राष्ट्रों की जनता ने चिरकाल से अपने अपने शासकों का चुनाव ही इस दृष्टि से करना प्रारंभ कर दिया है कि वह उनके अभीष्ट व्यक्ति को ही राष्ट्रसभा में सभ्य के तौर पर चुन कर भेजा करे। इस प्रकार शासन-पद्धति के निर्माताओं का उद्देश्य सर्वथा ही तोड़ा गया है तथा उसका अब कुछ भी ध्यान रख कर कार्य नहीं किया जाता।

अमेरिकन राष्ट्रसभा का एक बड़ा भारी गुण यह है कि वह सर्वदा स्थिर रहती है। यद्यपि उसके कुछ सभ्य प्रति दूसरे वर्ष बदलते रहते हैं तथापि सभ्यों से वह कभी भी रिक्त नहीं होती है, दो तिहाई सभ्य सदा ही उसमें विद्यमान रहते हैं, इस प्रकार यद्यपि अमेरिकन राष्ट्रसभा के सभ्य बदलते रहते हैं परंतु वह स्वयं स्थिर रहती है।

अमेरिकन राष्ट्रसभा में राष्ट्रसंघटन के संपूर्ण राष्ट्रों को सभ्य भेजने का समान अधिकार प्राप्त है। इस एक समानता के कारण ही छोटे छोटे अमेरिकन राष्ट्रों ने प्रतिनिधि सभा में जनसंख्या के अनुसार सभ्य भेजने के नियम को स्वीकृत किया है। क्योंकि राष्ट्रसभा में संपूर्ण राष्ट्रों के समान अधिकार होने से बड़े राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में अधिक सभ्यों को भेजते हुए भी छोटे राष्ट्रों पर अत्याचार करने में असमर्थ हैं।

प्रारंभ में अमेरिकन राष्ट्रसभा में केवल २६ ही

सभ्य थे। परंतु आज कल ९० हैं। संसार के अन्य सभ्य देशों की अपेक्षा अमेरिकन राष्ट्रसभा में सभ्यों की संख्या बहुत ही कम प्रतीत होती है और यह नीचे के ब्योरे से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है।

देश	सभ्य
अमेरिकन राष्ट्रसभा	९०
अंग्रेजी लार्डसभा	६००
प्रशियन राष्ट्रसभा	३००
फ़रासीसी राष्ट्रसभा	३००
कनाडा की ,,	८७
आस्ट्रेलिया ,,	३६
जर्मन राष्ट्रसभा	५८

अमेरिकन राष्ट्रसभा के सभ्यों की संख्या का न्यून होना उसके लिये अच्छा ही है, क्योंकि इससे साम्राज्य का कार्य बहुत ही अच्छी तरह से किया जा सकता है। अमेरिकन राष्ट्र-सभा के तीन प्रकार के कार्य कहे जा सकते हैं—(१) नियम संबंधी, (२) न्याय संबंधी, (३) शासन संबंधी।

राष्ट्रसभा की नियामकशक्ति आय व्यय के प्रस्तावों को छोड़ कर प्रतिनिधि सभा के साथ मिली हुई है। कर संबंधी प्रस्तावों को छोड़ कर कोई भी प्रस्ताव जाति की दोनों सभाओं में से कोई भी सभा पेश कर सकती है। राष्ट्रसभा का प्रस्तावों के पेश करने में बड़ा भारी हाथ है। आय व्यय संबंधी प्रस्ताव प्रतिनिधि सभा में ही पहले पेश हो सकते हैं तथा फिर राष्ट्र-

सभा में जाते हैं। इन प्रस्तावों में भी राष्ट्रसभा के सभ्य पर्य्याप्त तौर पर काट छाँट करने में स्वतंत्र हैं। यदि दोनों ही सभाओं का किसी प्रस्ताव पर विवाद हो तथा वे दोनों ही उसे पास करने में सन्नद्ध न हों तो उस दशा में राष्ट्रसभा तथा प्रतिनिधि सभा परस्पर मिल कर एक नवीन उपसमिति बनाती हैं। उपसमिति जो निर्णय दे वही निर्णय दोनों सभाएँ उस विवादास्पद प्रस्ताव के विषय में मान लेती हैं। प्रस्ताव जब तक दोनों सभाओं में पास न हो लेवे तब तक प्रधान के पास नहीं भेजा जाता है, प्रस्ताव का स्वीकृत करना न करना प्रधान के हाथ में है। परंतु यदि $\frac{2}{3}$ सम्मति से जातीय सभा की दोनों सभाएँ उस प्रस्ताव को पुनः पास कर देवें तो वह प्रस्ताव बिना प्रधान की स्वीकृति के ही राज्यनियम हो जाता है। यदि सभाओं के एक अधिवेशन में कोई प्रस्ताव पास न हो सके तो वह छोड़ा नहीं जाता। अगले अधिवेशन में उस पर पुनः विचार होता है तथा यदि उसे पास करना होता है तो पास कर दिया जाता है।

अमेरिकन राष्ट्रसभा अंग्रेजी लार्ड सभा के सदृश न्याय का कार्य भी करती है। शासनपद्धति की पहली और दूसरी नियमधारा के अनुसार जहाँ प्रतिनिधिसभा को 'किसी को अपराधी' ठहराने की शक्ति है वहाँ अपराधी के अपराध का न्याय करना राष्ट्रसभा के हाथ में है। जब अमेरिका के प्रधान पर मुकदमा खड़ा हो तब राष्ट्र का मुख्य न्यायाधीश ही राष्ट्रसभा में प्रधान का पद ग्रहण करता है जो कि प्रायः अमेरिका का उपप्रधान भी होता है। ऐसी घटना कई बार हो भी

चुकी है। १८६८ में प्रधान जानसन पर मुकदमा चला था, परंतु वह राष्ट्रसभा में छोड़ दिया गया था। एक बार युद्धसचिव तथा राष्ट्रसभा के एक सभ्य के साथ भी ऐसी ही घटना हो चुकी है। राष्ट्रसभा ने न्यायसभा के रूप में अभी तक कार्य बहुत ही अच्छी तरह से किया है। यह भी इसी लिये कि प्रायः राष्ट्रसभा के बहुत से सभ्य देश के बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राड्विवाक ही हुआ करते हैं। यह तो हुआ राष्ट्रसभा का न्याय संबंधी कार्य। अब हम उसके शासन संबंधी कार्य पर कुछ लिखेंगें।

राजदूत, मुख्य न्यायाधीश, मंत्री, तथा अन्य राष्ट्रसंघटन के अधिकारियों को नियत करने में राष्ट्रसभा प्रधान का हाथ बँटाती है। प्रायः प्रधान द्वारा निर्दिष्ट मंत्रिसभा के सभ्यों को राष्ट्रसभा बिना किसी प्रकार के बोलने चालने के ही स्वीकृत कर लेती है। यह एक रीति सी बन गई है और राष्ट्रसभा के सभ्यों का कथन है कि ऐसा करना ही उचित भी है क्योंकि मंत्रिसभा के सभ्यों का उत्तरदातृत्व जहाँ प्रधान पर है वहाँ उसी के द्वारा उनका चुनाव भी आवश्यक है। यद्यपि निम्नलिखित अधिकारियों के नियत करने में राष्ट्रसभा की स्वीकृति आवश्यक है परंतु यहाँ पर भी राष्ट्रसभा ने प्रधान को ही बहुत कुछ स्वतंत्रता दी है। वे अधिकारी ये हैं—(१) राजदूत, (२) राष्ट्रीय न्यायाधीश, (३) भिन्न भिन्न विभागों के मुख्य अधिकारी (४) नौसेनाधिपति, (५) स्थल सेनाधिपति, इत्यादि। राष्ट्रसभा प्रायः भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अधिकारियों को नियत किया करती है। कई एक शक्तिशाली प्रधानों ने

राष्ट्रसभा के इस अधिकार पर बहुत ही दाँत पीसे परंतु यह अधिकार अभी तक उसी के हाथ में है, प्रधान उसे अपने हाथ में न ले सका है। अन्य छोटे छोटे अधिकारियों को भी या तो प्रधान ही नियत कर देता है या 'राज्यनियम समिति' (Courts of Law) नियत कर देती है।

राष्ट्रसभा तथा प्रधान का उपरिलिखित कार्यों में सम्मिलित अधिकार शासनकार्य में तथा राजकीय प्रबंध में विलंब अवश्य करवाता है। आदि में प्रधान पर राष्ट्रसभा का बंधन इसी लिये रखा गया था कि वह स्वेच्छाचारी न हो सके। जो कुछ भी हो, अधिकारियों के नियत करने में राष्ट्रसभा तथा प्रधान के सम्मिलित अधिकार से जो हानियाँ हैं वे स्पष्ट ही हैं, उनको छिपाया नहीं जा सकता।

विदेशों के साथ संधि आदि के करने में भी प्रधान राष्ट्रसभा के पंजे में जकड़ा हुआ है। शासनपद्धति के निर्माताओं के काल में राष्ट्रसभा के सभ्य केवल २६ ही थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उस समय वह एक छोटी सी गुप्तसभा का कार्य भली प्रकार से कर सकती थी; परंतु इस समय इसके सभ्यों की संख्या पर्याप्त है अतः विदेशी संधि का विषय भी प्रधान तथा राष्ट्रसभा में दोनों के हाथ में सम्मिलित तौर पर होना अत्यंत हानिकारक है। यदि अमेरिका की स्थिति भी युरोपीय देशों के सदृश होती तो इस का सुधार शीघ्र ही करना पड़ता। दैवी घटना से अमेरिका युद्ध आदि के झगड़ों से अभी बहुत दूर है, अतः उसको

अभी तक इसमें परिवर्तन करने की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ है।

अमेरिका की प्रतिनिधि सभा में अमेरिकन राष्ट्रों के प्रतिनिधि नहीं होते हैं अपितु अमेरिकन जनता की ओर से वे लोग चुने जाते हैं। भिन्न भिन्न राष्ट्रों को उनकी जनसंख्या के अनुसार सभ्य भेजने का अधिकार मिला हुआ है।

प्रतिनिधि सभा।

आरंभ में जातीय सभा ने जनसंख्या के अनुसार जितने सभ्य नियत किए थे उनकी संख्या ६५ थी। उस समय प्रतिनिधि तथा जनसंख्या का अनुपात १ : ३०००० था। परंतु अब तो यह अनुपात बदल गया है और प्रतिनिधियों की संख्या भी बदल गई है। आज कल प्रतिनिधि सभा के सभ्य ३५७ हैं और प्रतिनिधि तथा जनसंख्या का अनुपात भी १ : १७३९०५ है। जन जिन राष्ट्रों की १७३९०५ के ६$\frac{1}{2}$ गुणा से कुछ ही जनसंख्या अधिक है उन्हें जातीय सभा ने ७ सभ्य भेजने का अधिकार दिया है और जिनकी १७३९०५ से जन संख्या कम भी है उन्हें भी १ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है। अमेरिका में १० वें वर्ष गणना की जाती है और उसी गणना के अनुसार १० वर्ष के लिये प्रत्येक राष्ट्र की प्रतिनिधि भेजने की संख्या निश्चित कर दी जाती है। प्रनितिधि सभा का प्रति युग्म वर्षों में (जैसे १८९२, ९४, ९६,) ही चुनाव हुआ करता है।

प्रतिनिधि सभा के सभ्य के तौर पर चुने जाने के लिये निम्नलिखित बातों का किसी व्यक्ति में होना आवश्यक है।

(१) पच्चीस वर्ष से आयु कम न हो।
(२) सात वर्ष से अमेरिका का नागरिक हो।
(३) चुनाव के समय उसी राष्ट्र में रहता हो जिसकी ओर से वह चुना गया हो।

प्रतिनिधि सभा के सभ्य प्रायः दो वर्ष के लिये ही चुने जाते हैं। राष्ट्रसभा के सभ्यों के सदृश इनका चुनाव नहीं होता है। इसका परिणाम यह है कि प्रति द्वितीय वर्ष संपूर्ण प्रतिनिधि सभा नवीन रूप से चुनी जाती है।

राष्ट्रसभा के शीर्षक में यह लिखा जा चुका है कि वह एक प्रकार से स्थिर कही जाती है क्योंकि उसके $\frac{2}{3}$ सभ्य सदा ही विद्यमान रहते हैं। परंतु अमेरिकन शासनपद्धति में प्रतिनिधि सभा के अनुसार ही राष्ट्रसभा भी बदलती हुई ही गिनी जाती है। दृष्टांत के तौर पर १८९५–९७ की जातीय सभा के अधिवेशन को ५४ वां अधिवेशन कहा जाता है, यह इसलिये कि उस समय प्रतिनिधि सभा का ५४ वाँ अधिवेशन था।

अमेरिकन शासनपद्धति ने चुनाव के लिये कोई विशेष गुण नियत नहीं किया है। जातीय सभा का यह निर्णय है कि भिम्न भिन्न राष्ट्रों के स्वराष्ट्रीय शासन के लिये जो जो व्यक्ति राष्ट्रीय शासकों को चुननेवाले हों वे ही राष्ट्रसभा तथा प्रतिनिधि सभा के सभ्यों के चुनने के अधिकारी हो सकते हैं।

सारांश यह कि अमेरिका में प्रतिनिधियों के चुनाव में भिन्न भिन्न राष्ट्र के अपने अपने नियम ही लगते हैं न कि राष्ट्रसंघटन के।

शासनपद्धति के चौदहवें (जो कि १८६६-६८ में पास किए गए) सुधार में राष्ट्रों पर इस बात का बल दिया गया है कि जहाँ तक हो सके वहाँ तक चुनने का अधिकार जनता में विस्तृत होवे । प्रतिनिधियों के चुनाव में भिन्न भिन्न राष्ट्रों का पर्याप्त धन व्यय हो जाता है । कई बार बड़े बड़े नगरों में केवल एक बार के चुनाव में ही २००० पाउंड खर्च हो जाते हैं । यद्यपि यह व्यय शासनपद्धति की नियमधाराओं के विरुद्ध है तथापि अपने आप को या अपने प्रतिनिधियों को ही चुनवाने में अमीर लोग रुपयों के बहाने में कोई कसर नहीं करते हैं ।

प्रतिनिधि सभा के सभ्यों के चुनाव में प्रायः ४० से ६० वर्ष की आयु के बीच के ही व्यक्ति आते हैं । ५० वीं जातीय सभा का जननिरीक्षण किया गया था तब मालूम पड़ा था कि उसमें लगभग $\frac{2}{3}$ सभ्य वकील तथा बैरिस्टर थे । इसी प्रकार ५२ वीं जातीय सभा के समय भी इनकी संख्या कुल सभ्यों की $\frac{2}{3}$ ही थी । वकीलों तथा बैरिस्टरों से उतर कर अमेरिकन जातीय सभाओं में व्यापारी तथा व्यवसायियों की संख्या हुआ करती है । परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि अमेरिका के राज्याधिकारी इसके सभ्य नहीं होते हैं और अमेरिका के प्रसिद्ध प्रसिद्ध धनाढ्य व्यक्ति भी इसके सभ्य नहीं बनते हैं, क्योंकि उनको इतना समय नहीं होता है कि वे अपना काम छोड़ कर देश की राजनीति में भाग ले सकें ।

प्रतिनिधि सभा में भी राष्ट्रसभा के सदृश अपने ही नियम हैं । प्रायः प्रतिनिधि सभा को अपनी उपस-

मितियों के लिये भी नियम बनाने पड़ते हैं। प्रतिनिधि सभा के सभ्य इतने होते हैं कि किसी भी कार्य का उनके द्वारा होना कठिन होता है। अतः प्रतिनिधि सभा अपने संपूर्ण कार्य उपसमितियों द्वारा ही करवाती है। उपसमितियों के सभ्यों का चुनाव एकमात्र प्रतिनिधि सभा के प्रधान के ही हाथ में है और यही एक कार्य है जिससे प्रतिनिधि सभा के प्रधान की शक्ति संपूर्ण अमेरिकन शासनपद्धति में एक समझी जाती है। प्रतिनिधि सभा की उपसमितियों की शक्ति अपने अपने कार्य में बड़ी भारी है और यह क्यों ? इसी लिये कि उपसमितियों के हाथ में ही प्रतिनिधि सभा ने लगभग अपनी संपूर्ण शक्ति बाँट दी है। राष्ट्रसभा के सभ्य संख्या में थोड़े होते हैं अतः वे अपनी उपसमितियों के वार्षिक विवरण को पूर्ण तौर पर सुनते हैं तथा विचारते हैं, स्थान स्थान पर उसका सुधार भी करते हैं परंतु प्रतिनिधि सभा अपनी अपनी उपसमितियों के वार्षिक विवरण की इस प्रकार आलोचना नहीं कर सकती है क्योंकि उसके सभ्यों की संख्या बहुत अधिक है। यह अभी हमने दिखाया है कि किस प्रकार उपसमितियों के हाथ में प्रतिनिधि सभा की संपूर्ण शक्ति चली गई है। यहाँ पर यह विचार स्वयं ही कर लेना चाहिए कि उस व्यक्ति की कितनी अधिक शक्ति होगी जो कि एकमात्र इन उपसमितियों के सभ्यों का चुननेवाला हो। प्रतिनिधि सभा के प्रधान की शक्ति इसीलिये अनुपमेय है। इसके चुनाव के काल में प्रतिनिधि सभा में जो विक्षोभ होता है वह देखने लायक है। प्रतिनिधि सभा अपने प्रधान को

आप ही चुनती है तथा उसे 'प्रधान' के स्थान पर अंगरेज़ी प्रतिनिधि सभा के सदृश 'प्रवक्ता' का नाम देती है। जो कुछ भी हो, अंगरेज़ी तथा अमेरिकन प्रवक्ता में आकाश पाताल का अंतर होता है।

अंगरेज़ी प्रवक्ता का मुख्य गुण 'निष्पक्षपात' होता है। यद्यपि वह भी किसी न किसी दल की ओर से ही चुना जाता है परंतु ज्योंही वह बेंच से उठ कर प्रधान का पद ग्रहण करता है उसी समय वह दलसंबंधी प्रेमों को छोड़ कर सबको एक ही दृष्टि से देखने लगता है। चाहे उसका कोई मित्र हो चाहे शत्रु हो, प्रवक्ता के रूप में तो उसके लिये सब एक से हैं। अंगरेज़ी प्रवक्ता का भी मान्य, शक्ति, तथा अधिकार पर्याप्त होता है परंतु वह इस लिये नहीं कि उसके पास कोई राजनैतिक शक्ति नहीं है। यद्यपि वह भी प्रतिनिधि सभा में किसी एक दल को प्रबलता दे सकता है परंतु वह ऐसा नहीं करता क्योंकि इंगलैंड में आरंभ से ही ऐसा चला आया है।

परंतु अमेरिकन 'प्रवक्ता' को तो पक्षपात की मूर्ति कहा जा सकता है। वह प्रतिनिधि सभा की जितनी उपसमितियाँ बनाता है उनमें अपने मित्रों तथा अपने दलवालों को ही रखता है। उपसमितियों के प्रधान को भी अमेरिकन प्रवक्ता ही चुना करता है। इस कार्य में यद्यपि उसे पर्याप्त परिश्रम तथा चिंताओं का सामना करना पड़ता है परंतु शक्ति के साथ ये बातें रहा ही करती हैं। अमेरिकन प्रवक्ता की शक्ति की अंगरेज़ी महामंत्री से उपमा दी जा सकती है। दोनों

को अपनी अपनी समितियों के बनाने में समान चिंताओं का सामना करना पड़ता है। अमेरिका के प्रवक्ता की शक्ति तथा मुख्यता इसीसे भी समझी जा सकती है कि उसका वेतन १६०० पाउंड है जो कि अमेरिका जैसे देश में बहुत ही अधिक समझा जाता है। प्रवक्ता मान तथा दर्जे में उप-प्रधान के नीचे तथा मुख्य न्यायाधीश के तुल्य समझा जाता है।

जातीय सभा।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि किसी भी प्रस्ताव के राज्यनियम बनने के लिये दोनों सभाओं की स्वीकृति और प्रधान के हस्ताक्षर का होना आवश्यक है। यदि प्रधान हस्ताक्षर न करे तथा प्रस्ताव को सभाओं के पास लौटा दे और सभाएँ पुनः उसी प्रस्ताव को अपने सभ्यों की $\frac{2}{3}$ सम्मति से पास करें तो वह बिना किसी प्रधान के हस्ताक्षर के राज्यनियम बन जाता है।

प्रत्येक प्रस्ताव का प्रधान द्वारा १० दिन तक लौटा देना आवश्यक है। यदि वह इन दिनों के अंदर न लौटा दे तो वही प्रस्ताव राज्यनियम बना हुआ समझा जाता है। अमेरिका में सभा के कार्य को प्रारंभ करने के लिये आधे सभ्यों का आरंभ से अंत तक होना आवश्यक है। इंगलैंड में जहाँ प्रातिनिधि सभा म ६७० सभ्य हैं वहाँ उसके कार्य के प्रारंभ करने के लिये ४० सभ्यों का होना ही आवश्यक रखा गया है। अमेरिका में आय व्यय संबंधी प्रस्ताव को छोड़ कर कोई भी प्रस्ताव किसी सभा की ओर से आ सकता है। प्रातिनिधि सभा में

जो प्रस्ताव पेश होते हैं उनकी वार्षिक संख्या लगभग १०००० के है। यह संख्या बहुत ही अधिक है। कुछ वर्षों के प्रस्तावों का ब्योरा निम्नलिखित है।

जातीय सभा का अधिवेशन।		प्रस्तावों की संख्या।	
(१८६१–६३)	३७ वीं	१०५४	६११ प्रतिनिधि सभा में पेश किए गए। ४४३ राष्ट्रसभा में पेश किए गए।
(१८९१–९३)	५१ वीं	१९६४६	१४३२८ प्रति० द्वारा ५३१८ राष्ट्र स० द्वारा

इस प्रकार प्रस्तावों की संख्या तथा नियम निर्माण के विषय में जो कुछ लिखना था लिखा जा चुका है। अब शासन-पद्धति के मुख्य अंग 'प्रधान' पर कुछ लिखा जायगा।

अमेरिका की शासनपद्धति के अनुसार शासन की संपूर्ण शक्ति प्रधान के हाथ में है। परंतु एक व्यक्ति यह कार्य कैसे कर सकता है ? वास्तव में प्रधान तो बहुत

प्रधान।

से विभागों के मुख्य मुख्य अधिकारियों को नियत करता है तथा उनकी सहायता से संपूर्ण अमेरिका का शासन करता है। उपप्रधान के तो कोई विशेष अधिकार ही नहीं हैं। वह तो प्रधान की अनुपस्थिति में ही कार्य करता हैं और वैसे उसका सहायक होता है।

जनता द्वारा चुने हुए सभ्य ही प्रधान का चुनाव करते हैं। इस प्रकार प्रधान का चुनाव जनता के हाथ में सीधे तौर

पर नहीं है अपितु प्रतिनिधियों के द्वारा होता है। प्रत्येक राष्ट्र को जितने सभ्य जातीय सभाओं के लिये चुनने पड़ते हैं उतने ही सभ्य उन्हें प्रधान के चुनाव के लिये अलग चुनने पड़ते हैं।

शासनपद्धति के निर्माताओं का प्रतिनिधियों द्वारा प्रधान के चुनाव में उद्देश्य यह था कि प्रतिनिधि अपनी अपनी सम्मति द्वारा प्रधान का चुनाव करें परंतु प्रायः आज कल ऐसा नहीं होता है। प्रधान के चुनाव में भी भिन्न भिन्न दलों का हाथ है।

अमेरिका में उत्पन्न वा शासनपद्धति निर्माण काल में बने हुए नागरिक को छोड़ कर अन्य किसी को प्रधान बनने का अधिकार नहीं है। ३५ वर्ष से न्यून आयु के व्यक्ति को प्रधान का पद ग्रहण करने का अधिकार नहीं है। १४ वर्षों से कम वहाँ रहा हुआ व्यक्ति भी प्रधान नहीं बन सकता है।

प्रधान के अमेरिका के शासक के तौर पर निम्नलिखित कार्य कहे जा सकते हैं—

(१) अमेरिका के कार्य पर बुलाई हुई राष्ट्रीय सेना के जातीय स्थल तथा नौ सेना के मुख्य सेनापति के पद को ग्रहण करना।

(२) राष्ट्रसभा की अनुमति से राजदूत, राष्ट्रीय मुख्य मुख्य शासक, मुख्य न्यायाधीश तथा भिन्न भिन्न राजकीय विभागों के उच्च उच्च अधिकारियों को नियत करना।

(३) राष्ट्रसभा के $\frac{2}{3}$ सभ्यों की अनुमति से विदेशीय राष्ट्रों से संधि आदि करना।

(४) प्रतिनिधि सभा द्वारा दंडित व्यक्ति को छोड़ कर अन्य व्यक्तियों के अपराध को क्षमा कर सकना।

(५) आवश्यकता पड़ने पर दोनों ही सभाओं का इकट्ठा अधिवेशन बुलाना।

(६) जो प्रस्ताव राजनियम बनाना मंजूर न हो उस पर हस्ताक्षर न करना तथा जातीय सभाओं के पास पुनर्विचार के लिये उसे लौटा देना। यदि जातीय सभा के $\frac{2}{3}$ सभ्य उसे पुनः पास कर दें तो वह राज्यनियम बन जाता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

(७) जातीय सभा को संपूर्ण राष्ट्रों के परस्पर मेल का विश्वास दिलाते रहना।

(८) अमेरिकन राज्याधिकारियों को कार्य सुपुर्द करना।

(९) विदेशी दूतों का स्वागत करना।

(१०) इस बात का ध्यान रखना कि राज्यनियमों का संचालन विश्वासपूर्वक उचित रीति से हो रहा है वा नहीं।

इन सब उपरिलिखित अधिकारों को तथा कर्त्तव्यों को चार विभागों में बाँट सकते हैं।

(१) विदेशियों से संबद्ध कार्यों का अधिकार।

(२) अंतरीय शासन से संबद्ध अधिकार।

(३) नियमाक अधिकार।

(४) अधिकारियों को नियत करने के संबंध के अधिकार।

अब हम इनमें से एक एक का पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

अमेरिका में विदेशीय नीति का भी एक मुख्य स्थान होता यदि अमेरिका भी युरोप जैसे देशों की तरह भिन्न भिन्न शक्तिशाली विरोधी राष्ट्रों के बीच में पड़ा होता। अमेरिका युरोप से दूर है, अतः युरोप के विक्षोभों का अमेरिका पर बहुत बड़ा प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस दशा में विदेशीय नीति का अमेरिका में मुख्य स्थान न होने पर भी उसे विशेष क्षति अभी तक नहीं हुई है। प्रधान युद्ध की उद्घोषणा नहीं कर सकता है क्योंकि यह कार्य जातीय सभा का है। पर इसमें संदेह नहीं है कि अमेरिका का प्रधान यदि चाहे तो वह राज्य-कार्य इस प्रकार चला दे जिससे जातीय सभा के लिये यह आवश्यक हो जाय कि वह युद्ध की उद्घोषणा करे। १८४५ में प्रधान पालक ने ऐसा किया भी था। प्रतिनिधि सभा का यद्यपि राजनीति में कोई सीधा हस्तक्षेप नहीं है तथापि अपनी सभा में वह भिन्न भिन्न प्रस्ताव भिन्न भिन्न राजनीति के विषय में पास करती रहती है और कई बार राष्ट्रसभा को भी अपने प्रस्तावों में सम्मिलित होने के लिये बुला लिया करती है। यह तभी होता है जब किसी प्रस्ताव पर उसे विशेष बल देना होता है। परंतु प्रधान इन प्रस्तावों पर चलने के लिये बाधित नहीं है और प्रायः वह इन प्रस्तावों की अवहेलना ही किया करता है।

(१) विदेशियों से संबद्ध कार्यों का अधिकार

प्रतिनिधि सभा उपरिलिखित प्रकार से प्रधान को प्रभावित नहीं कर सकती है और वह एक दूसरी विधि से उसे अपनी इच्छाओं पर चलने के लिये बाधित भी

कर सकती है। व्यापार-व्यवसाय की संधि तथा आय व्यय संबंधी विषयों में प्रधान प्रतिनिधि सभा के बंधन में है। आधुनिक युद्धों में धन की कितनी आवश्यकता होती है यह किसीसे छिपा नहीं है। प्रधान युद्ध उद्घोषित कर ही नहीं सकता है जब तक कि प्रतिनिधि सभा रुपए आदि की उसे सहायता देना स्वीकृत न कर ले। सारांश यह है, कि प्रधान जहाँ राष्ट्रसभा तथा प्रतिनिधि सभा के बंधन में है वहाँ स्वतंत्र भी है। प्रतिनिधि सभा की शक्ति से वह बाहर है और राष्ट्रसभा भी उसे बहुत सी बातें स्वतंत्र तौर पर करने देती है।

शांतिकाल में प्रधान के अधिकार अति परिमित होते हैं। यह इस लिये कि प्रायः भिन्न भिन्न राष्ट्र अपना प्रबंध तथा शासन करने में बहुत कुछ स्वतंत्र हैं।

(२) अंतरीय शासन संबंधी अधिकार। परंतु युद्ध के काल में, विशेषतः देशिक युद्ध (Civil war) में प्रधान की शक्ति अनंत सीमा तक बढ़ जाती है। युद्ध के काल में वह स्थल सेना तथा नौ सेना का मुख्य सेनापति होता है और राष्ट्र की संपूर्ण शक्ति को अपने हाथ में कर सकता है। यदि जातीय सभा चाहे तो उसे उस विपत्काल में अनंत शक्तिशाली और एकमात्र स्वेच्छाचारी का रूप भी दे सकती है। इस शक्ति से प्रधान राष्ट्रसंघटन के संपूर्ण राष्ट्रों के अंतरीय विद्रोहों को दमन कर सकता है और प्रधान के भय से इस प्रकार की घटनाएँ प्रायः होती भी नहीं हैं।

अमेरिका का प्रधान दोनों जातीय सभाओं में से किसी भी

सभा का सभ्य नहीं हो सकता है। वह तो स्वयं जनता का एक अधिकारी है। जनता ने उसे नियामक शक्ति की बुराइयों से अपने आपको बचाने के लिये नियत किया है तथा उसे साथ ही यह अधिकार भी दिया है कि वह जिस प्रस्ताव को चाहे एक बार ही पास न करे। न अमेरिका का प्रधान और न उसके अधिकारी सभाओं में एक भी प्रस्ताव पेश कर सकते हैं क्योंकि वे सभाओं के सभ्य ही नहीं होते हैं।

(३) नियम अधिकार।

शासनपद्धति के निर्माताओं ने राज्याधिकारियों को नियत करना प्रधान के हाथ में दिया है और इस प्रबल शक्ति का वह दुरुपयोग न कर सके अतः उस पर राष्ट्रसभा की स्वीकृतिरूपी कैद भी लगा दी है। प्रधान जॉनसन को छोड़ कर अन्य किसी भी प्रधान से राष्ट्रसभा का इस विषय में प्रायः झगड़ा नहीं हुआ है। प्रधान द्वारा नियत किए हुए बड़े बड़े अधिकारियों की सभा को हम प्रधान की मंत्रिसभा कह सकते हैं। एक बार राष्ट्रसभा की स्वीकृति से मंत्रियों को नियत कर के प्रधान उन्हें पदच्युत भी कर सकता है या नहीं, इस विषय पर चिरकाल से विवाद चल रहा है। परंतु बहुत से विद्वानों की सम्मति तो यही है कि वह ऐसा कर सकता है। अमेरिका के राजकीय विभाग तथा उनके अधिकारी निम्नलिखित हैं।

(४) अधिकारियों की नियुक्ति संबंधी अधिकार।

विभाग	मंत्री
(१) राष्ट्र विभाग	राष्ट्रसचिव
(२) कोष विभाग (खजाने का विभाग)	कोष "
(३) युद्ध विभाग	युद्ध "
(४) नौ विभाग	नौ "
(५) न्याय विभाग	न्याय "
(६) डाक तार विभाग	डाक तार "
(७) अंतरीय विभाग (गृह्य प्रबंध विभाग)	अंतरीय "
(८) कृषि विभाग	कृषि "

आज कल प्रायः यह प्रश्न सर्वत्र उठा हुआ है कि अमेरिका में प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्ति प्रधान का पद क्यों नहीं ग्रहण करते हैं जब कि प्रधान की शक्ति तथा उसका मान्य भी बहुत ही अधिक है। इसके कारण महाशय ब्राइस की सम्मति में ये हैं—

(१) पहला कारण तो यह है कि अमेरिका में बड़े बड़े योग्य व्यक्ति राजनीति में प्रवेश करने का इतना यत्न नहीं करते जितना कि इंगलैंड तथा अन्य युरोपीय जातियों में। यह क्यों ? यह इसीलिये कि अमेरिका के बड़े बड़े योग्य पुरुष धन बटोरने में जितना अनुराग रखते हैं उतना राजनैतिक कार्यों में नहीं।

(२) दूसरा कारण यह है कि अमेरिकन शासनपद्धति ही इस प्रकार की है कि योग्य योग्य व्यक्तियों को प्रधान पद ग्रहण करने का अवसर कम मिलता है।

(३) तीसरा कारण यह भी कहा जा सकता है कि बहुत ही प्रसिद्ध व्यक्तियों के शत्रु भी पर्याप्त ही होते हैं। मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों के शत्रु तो अधिक नहीं होते हैं परंतु मित्र अवश्य अधिक होते हैं।

छठाँ परिच्छेद ।

स्विट्ज़लैंड ।

स्विट्ज़लैंड संपूर्ण युरोप का स्वर्ग कहा जा सकता है। उक्त पर्वतमालिका पर स्थित स्विसजनता जिस स्वतंत्रतादेवी का दुग्ध पान कर रही है वह अन्य देशों की जनता से सैकड़ों मील दूर है। स्विट्ज़लैंड में किसी एक जाति का निवास नहीं है।

राष्ट्रसंघटन का उद्भव ।

भिन्न भिन्न जातियों के व्यक्तियों की ही वह निवासभूमि है। वर्त्तमान काल की गणना के अनुसार उस स्वर्गीय देश में २०८३०५७ जर्मन, ६३४६१३ फरासीसी, १५५१३० इटैलियन, तथा ३८३५७ रोमन भाषाभाषी जनों का निवास है। यदि बाँधवता की तथा जातीयता की भिन्नता ही स्विस् जनता में होती तब भी कोई बात थी। उसमें धर्म की भिन्नता भी पर्याप्त है। उसका कारण यह है कि स्विट्ज़लैंड के पर्वतीय प्रदेशों के कुछ प्रांतों पर युरोप के धार्मिक परिवर्त्तनों तथा सुधारों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा है। इसका परिणाम यह है कि उस स्थान के निवासी कैथोलिक धर्म के ही कट्टर पक्षपाती हैं। परंतु इसमें संदेह नहीं कि स्विट्ज़लैंड की तराई के लोग पूर्ण प्रोटेस्टेंट भी हैं। इस प्रकार गणना करने से प्रतीत हुआ है कि स्विट्ज़लैंड में जहाँ प्रोटेस्टेंट ३/५ हैं वहाँ कैथोलिकों की संख्या २/५ ही है। धर्म, भाषा, तथा जातीयता में परस्पर सर्वथा विभिन्न स्विस जनता में कौन सी 'शासनपद्धति' उपयुक्त हो सकती है? यह प्रश्न स्वभावतः ही चित्त में उपस्थित

होता है। इसका समाधान करने से पूर्व हम स्विटजलैंड के राजनैतिक परिवर्त्तन पर ही पहले पहल कुछ लिख देना आवश्यक समझते हैं।

स्विट्जलैंड में सन् १३०९ में ही वे परिवर्त्तन आरंभ हो गए थे जिन्होंने वर्त्तमानकालीन आश्चर्यप्रद, विचित्र स्विस-शासनपद्धति को जन्म दिया है। उन दिनों में लूसर्न सरोवर के तटस्थ स्कीज, पूरी, तथा अंतर्वेडन के प्रांतों ने सम्राट् हेनरी सप्तम से कई एक स्वतंत्रता संबंधी अधिकार प्राप्त कर लिए थे। १३ वीं सदी के मध्य में ही ये सब के सब प्रांत परस्पर मिल गए थे और यह तत्कालीन स्विस राष्ट्र-संघटन ही वर्त्तमानकालीन स्विस राष्ट्रसंघटन का जन्मदाता कहा जा सकता है। समय में शनैः शनैः इस राष्ट्र-संघटन में जहाँ अन्य स्विस-राष्ट्र मिलते चले गए वहाँ इसकी शक्ति भी बहुत ही बढ़ गई। विजयी नेपोलियन ने स्विस राष्ट्र-संघटन से स्वतः लाभ उठाने की इच्छा से उसमें अपनी सेना भेजी तथा तत्कालीन फरासीसी शासनपद्धति के अनुसार ही वहाँ की शासनपद्धति भी कर दी और अपने साथ उसका घनिष्ट संबंध जोड़ने का यत्न भी किया। १८१५ में ज्यों ही फ्रांस की शक्ति स्विट्जलैंड से हटी त्योंही वहाँ की शासनपद्धति में परिवर्त्तन होना आरंभ हुआ। राष्ट्र-संघटन के संपूर्ण राष्ट्र फरासीसी शासनपद्धति से बहुत ही अधिक असंतुष्ट थे अतः उन्होंने अपने देश की प्राचीन शासनपद्धति का पुनः उद्धार किया।

१८४८ के लगभग स्विस प्रोटेस्टेंट राष्ट्रों तथा कैथोलिक राष्ट्रों के बीच धार्मिक युद्ध हो गया जिसमें कैथोलिक हारे।

इसका परिणाम यह हुआ कि १८४८ में एक नई शासनपद्धति निर्माण की गई । १८७४ में शासनपद्धति में कई एक ऐसे परिवर्त्तन किए गए जिससे राष्ट्र-संघटन की शक्ति पूर्वापेक्षा बढ़ गई जो कि आज कल स्विस-राष्ट्र-संघटन के आधार का काम कर रही है। स्विस-राष्ट्र-संघटन में छोटे छोटे चौबीस राष्ट्र सम्मिलित हैं। शासनपद्धति के अनुसार अमेरिका की तरह स्विटजलैंड में भी दो सभाओं का होना निश्चय हुआ। एक राष्ट्र-सभा, द्वितीय प्रतिनिधि सभा। राष्ट्रसभा में भिन्न भिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों का आना निश्चय हुआ और प्रतिनिधि सभा में जनता के प्रतिनिधियों का आना ही उपयुक्त ठहराया गया। १८७४ में राष्ट्र-संघटन का मुख्य न्यायालय बनाया गया जो कि स्विट्जँलड में साम्राज्य का मुख्य न्यायालय समझा जाता है।

राष्ट्र-संघटन के गुण।

स्विस्-राष्ट्र-संघटन प्रति दिन नवीन नवीन नियमों को पास करवा कर अपनी शक्ति को बढ़ाता जाता है और उसका कारण यह है कि स्विस्-राष्ट्र स्वयं इतने छोटे हैं कि बहुत से कार्य एकमात्र उनसे नहीं किए जा सकते हैं। वे अपनी आवश्यकताओं को अकेले ही पूर्ण करने में सर्वथा ही असमर्थ हैं। इस दशा में राष्ट्र-संघटन का बहुत से कार्यों को अपने हाथ में लेकर उन्हें सहायता पहुँचाना आवश्यक प्रतीत होता है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि स्विट्जलैंड में सबसे बड़े से बड़े राष्ट्र की जन-संख्या पाँच लाख से ऊपर नहीं है। और ऐसे भी छोटे छोटे राष्ट्र उसमें सम्मिलित हैं जिनकी जनसंख्या तेरह हजार से ऊपर नहीं है। स्विस्-राष्ट्र-संघटन

के निम्नलिखित कार्य गिनाए जा सकते हैं-

(१) राष्ट्रों के विदेशीय संबंधों का निरीक्षण तथा नियमन।
(२) राष्ट्रों की अंतरीय स्वरक्षा, शांति तथा प्रबंध को करना।
(३) देश के धार्मिक संघों तथा मठों का प्रबंध करना।
(४) मादक द्रव्यों के विक्रय तथा व्यवसायों के संचालन के लिये नियमों का बनाना।
(५) रेलवे के निर्माण तथा संचालन का प्रबंध करना।
(६) विशेष विशेष रोगों से जनता को बचाने के लिये स्वास्थ्य संबंधी नियम बनाना।
(७) व्यवसायों में श्रमियों की उन्नति के लिये श्रमसंबंधी नियमों का बनाना।
(८) श्रमियों का बीमा कराना तथा व्यवसायिक नियमों को बना कर प्रचलित करना।
(९) नदियों तथा जंगलों का निरीक्षण करना।
(१०) आवश्यकीय स्थानों पर भिन्न भिन्न राष्ट्रों के प्रेस संबंधी तथा निवास संबंधी राष्ट्रीय नियमों को शिथिल करना।
(११) मुख्य मुख्य सड़कें तथा पुलों का निरीक्षण करना।

फ्रीबर्ग नामी राष्ट्र को छोड़ कर स्विस्-राष्ट्र-संघटन के प्रायः सभी राष्ट्रों में सीधे तौर पर या टेढ़े तौर पर प्रत्येक राज्यनियम के पास करवाने वा न करवाने में राज्य-नियम द्वारा जनसम्मति लेने की कोई न कोई विधि अवश्य प्रचलित है।

जनसम्मति विधि।

छोटे छोटे राष्ट्रों में जहाँ जनसम्मति सीधे ही प्रजा से ले ली

जाती है वहाँ बड़े बड़े राष्ट्रों में, जिनमें कि प्रतिनिधि-सभात्मक राज्यप्रणाली का ही बहुत कुछ अवलंबन है, जनसम्मति लेने की एक नवीन विधि काम में लाई जाती है। स्विट्ज़लैंड में तीन प्रकार की जनसम्मति काम में लाई जाती है।

(१) अबाधित जनसम्मति।

(२) बाधित जनसम्मति।

(३) नियामक जनसम्मति।

जिन जिन स्विस् राष्ट्रों में अबाधित जनसम्मति की रीति प्रचलित है वहाँ राज्य स्वयं राज्यनियमों के बनाने में जनसम्मति के लेने के लिये प्रजा की ओर से बाधित नहीं हैं। हाँ, इसमें संदेह नहीं है कि यदि जनता किसी राज्यनियम को राष्ट्र में प्रचलित होने से सर्वथा ही हटाना चाहे तो वह उसे हटा सकती है। इस अवस्था में जनता के बहुत से व्यक्ति (व्यक्तियों की संख्या भिन्न भिन्न राष्ट्रों के राज्यनियमों द्वारा भिन्न भिन्न नियत है) अपने अपने हस्ताक्षर कर के राज्य के पास एक ऐसा प्रार्थनापत्र भेजते हैं जिसमें लिखा होता है कि अमुक अमुक राज्यनियम हमें अभीष्ट नहीं है। अतः उन पर जनता की सम्मति (राज्यनियमों पर वे ही व्यक्ति सम्मति दे सकते हैं जिनको कि प्रतिनिधिसभा के सभ्य चुनने का अधिकार प्राप्त है) ले ली जाय। राज्य इस प्रकार के प्रार्थनापत्र के पहुँचने पर राज्यनियमों पर जनसम्मति लेने के लिये बाधित है। प्रार्थनापत्र में लिखे हुए राज्यनियमों पर राज्य जनसम्मति लेता है और जनता को हाँ या ना

एक ही उत्तर देना पड़ता है। इस प्रकार की जनसम्मति लेने से यदि कोई राज्यनियम न पास हुआ तो राज्य को अपनी इच्छाओं के विरुद्ध भी उस नियम को राष्ट्र में प्रचलित करने से हटाना पड़ता है। इस प्रकार प्रार्थनापत्र द्वारा राज्य की जनसम्मति लेने की विधि अबाधित जनसम्मति की विधि कही जाती है। परंतु बहुत से ऐसे स्विस् राष्ट्र हैं जिनमें बाधित जनसम्मति की विधि का ही प्रचार है। अर्थात् उन उन राष्ट्रों में राज्य को राज्यनियम के बनाने के लिये स्वयं ही जनता की सम्मति लेनी पड़ती है। जनता को प्रार्थनापत्र भेजने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

बाधित जनसम्मति किसी भी राष्ट्र की शासनपद्धति को प्रजासत्तात्मक राज्य के सिद्धांतों के बहुत समीप तक पहुँचा देती है, क्योंकि इससे प्रत्येक राज्यनियम

बाधित जनसम्मति।

के पास करने या न करने में सीधे तौर पर जनता की ही सम्मति होती है। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि इस विधि द्वारा जनता में शांति भंग नहीं होने पाती। अबाधित जनसम्मति की विधि में प्रार्थनापत्र पर जनता के हस्ताक्षर करवाने में राष्ट्र में बड़ा भारी विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। वैलेस नामी स्विस् राष्ट्र में ही १८४४ में पहले पहल अबाधित जनसम्मति की विधि प्रचलित हुई थी। उस राष्ट्र में यह विधि असफल सी सिद्ध हुई, क्योंकि राज्य के बहुत से आवश्यक नियमों को भी जनता ने न पास किया। जो कुछ भी हो। सन् १८५२ में कुछ आर्थिक विषयों के लिये इस विधि का अवलंबन करना वहाँ उचित ठहराया

गया। ज्यों ज्यों समय गुजरा अन्य राष्ट्रों ने भी अबाधित वा बाधित जनसम्मति की विधि में से किसी न किसी विधि का अवलंबन कर लिया है, आवश्यकता पड़ने पर एक विधि को छोड़ कर दूसरी विधि का तथा दूसरी को छोड़ कर पहली का भी वे अवलंबन करते रहे। परंतु यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि आज कल प्राय: सब राष्ट्रों में यदि शासनपद्धति में किसी प्रकार का परिवर्तन करना हो तो बाधित-जन-सम्मति की विधि ही का आश्रय लेना पड़ता है। शासनपद्धति से अतिरिक्त विषयों में तो किसी राष्ट्र में कोई विधि प्रचलित है किसी में कोई। स्थूल तौर पर दिग्दर्शन कराने के लिये भिन्न भिन्न राष्ट्रों की जनसम्मति की विधियों को हम नीचे देते हैं—

राष्ट्र।	जनसम्मति– बाधित या अबाधित	अवलंबन का समय।
राष्ट्रसंघटन	अबाधित	१८७४
जूरिच (Zurich)	बाधित	१८६९
बर्न (Berne)	,,	,,
लूसर्न (Lucerne)	अबाधित	१८६९
स्कीज़ (Schwyz)	बाधित साधारण तौर पर	१८४८ तथा
	अबाधित (संधियों में)	१८७६
जग (Zug)	अबाधित	१८७७
फ्रीबर्ग (Freiburg)	,,	,,
साल्यूर (Soleure)	बाधित	१८६९ (अबाधित १८५६)
बैस्ल नगर (Basle)	अबाधित	१८६१,१८७५

बैस्ल ग्रामीण (Basle)	बाधित	१८६३
शाफ् हासन (Schaffhausen)	,,	१८९५ (१८५६ अबाधित)
सेंट गाल (St. Gall)	अबाधित	१८६१ तथा १८७५
ग्रिजंस (Grisons)	बाधित	१८५२
आर्ग्री (Aargau)	,,	१८७०
थर्गो (Thurgau)	,,	१८६९
टिसिनो (Ticino)	अबाधित	१८८३ तथा १८९२
वाड् (Vaud)	अबाधित साधारण वि.	१८८५
	बाधित (आर्थिक वि.)	१८६१
वैलेस (Valais)	बाधित (आर्थिक वि.)	१८५२
न्यूकेटल (Neuchatel)	अबाधित	१८७९
	बाधित (आर्थिक वि.)	१८५८
जिनीवा (Geneva)	अबाधित	१८७९

शासनपद्धति में परिवर्तन करने के लिये स्विस्-राष्ट्र-संघटन को बाधित जन-सम्मति-विधि का ही अवलंबन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य विषयों पर यदि साम्राज्य के तीस हजार मनुष्य या आठ राष्ट्र मुख्य राज्य के पास प्रार्थनापत्र भेजें तो मुख्य राज्य को उन विषयों पर जनसम्मति लेनी पड़ती है। मुख्य राज्य द्वारा पास किया हुआ नियम नब्बे दिनों तक साम्राज्य में प्रचलित नहीं किया जा सकता है। यह नियम इस लिये किया गया है कि जनता यदि इस पर

'अबाधित-जन-सम्मति' लेना चाहे तो उसे तीस हजार मनुष्यों के हस्ताक्षर करवा कर प्रार्थनापत्र को मुख्य राज्य के पास भेजने का अवसर मिल सके।

अभी तक भिन्न भिन्न राष्ट्रों की ओर से अबाधित-जन-सम्मति लेने के लिये प्रायः मुख्य राज्य के पास प्रार्थनापत्र नहीं भेजा गया है। पर जनता के तीस हजार व्यक्तियों द्वारा कई बार प्रार्थनापत्र भेजे जा चुके हैं। १८७४ से १८९५ तक लगभग १८२ नियमों में से २० नियमों पर अबाधित जन-सम्मति ली गई जिन में से केवल ६ ही नियम जनता ने पास किए तथा अन्य सब नियमों को पास नहीं किया। इसी समय में मुख्य राज्य की ओर से १० शासनपद्धति नियम बाधित जन-सम्मति के लिये जनता के पास भेजे गए जिनमें से केवल ६ ही पास किए गए। इसी प्रकार बर्न नामी राष्ट्र में १८६९ से १८९६ तक ९७ राष्ट्रीय प्रस्ताव जनता में पास होने के लिये भेजे गए। इनमें से केवल ६९ ही पास हुए शेष छोड़ दिए गए। सालूर नामक राष्ट्र में भी यही घटना हुई है। यहाँ १८७० से १८९१ तक ६४ नियम जनता के पास भेजे गए थे जिनमें से केवल पंद्रह ही नहीं पास किए गए थे। शेष ५१ नियमों को जनता ने स्वीकार कर लिया था। इसी प्रकार के परिणाम जूरिच नामी राष्ट्र ने भी प्रगट किए हैं।

स्विट्जर्लैंड की जन-सम्मति-विधि द्वारा न पास किए हुए नियमों पर जब विचार किया जाता है तो पता लगता है कि प्रायः जनता ने उन्हीं प्रस्तावों को नहीं पास किया है जिनसे अधिक सुधार होने की आशा थी। यह क्यों?

यह इसीलिये कि प्रायः जनता अपने प्रतिनिधियों की अपेक्षा अधिक संकुचित विचार की हुआ करती है। स्विट्ज़लैंड में जन-सम्मति-विधि की विशेष तौर पर समालोचना हुआ करती है। समालोचकों का कथन है कि यह विधि भी जनता की सम्मति की वास्तविक सूचक नहीं कही जा सकती है, क्योंकि राज्य-नियमों के पक्षपाती लोग प्रायः इतनी उत्सुकता से सम्मति देने के लिये नहीं जाते हैं जितनी उत्सुकता से विपक्षी लोग जाते हैं। यह इसीसे प्रत्यक्ष है कि वर्न नामी राष्ट्र में कुल सम्मति देने योग्य पुरुषों के ४३ प्रति सैकड़ा ही 'जन-सम्मति विधि' में राज्य-नियमों पर सम्मति देने जाते हैं। विचित्रता यह है कि इसकी अपेक्षा सम्मति देनेवालों की अधिक संख्या प्रतिनिधियों के चुनाव के समय प्रति सैकड़ा हुआ करती है, जो कि गणना के अनुसार ६३ होती है। यह अंतर इस बात का सूचक है कि जनता का प्रेम 'जन-सम्मति-विधि' में उतना नहीं है जितना कि चुनाव में है। प्रस्तावों के विषयों के अनुकूल ही सम्मति देनेवालों की संख्या घटा बढ़ा करती है। कई एक प्रस्तावों पर जहाँ ८७·६ सम्मति देनेवाले पहुँचते हैं वहाँ कुछ पर केवल २०·२ ही। जनता के अधिक प्रिय विषयों से ले कर न्यून प्रिय विषयों तक की सूची यथाक्रम इस प्रकार है।

(१) धार्मिक विषय
(२) राजनैतिक विषय
(३) रेल की सड़कें
(४) विद्यालय

(५) आय-व्यय संबंधी विषय
(६) शासन संबंधी विषय

उपरोक्त सूची से स्पष्ट हुआ होगा कि जनता को शासन संबंधी विषय ही सब से कम प्रिय हैं तथा उसी पर सम्मति देनेवाले भी बहुत ही कम पहुँचते हैं। यह क्यों ? यह इसी लिये कि जनता जो विषय समझ सकती है तथा विचार सकती है उसी पर सम्मति देने के लिये अधिकतर जाती है। शासन संबंधी कठिन विषय उसकी समझ में नहीं आ सकते हैं, अतः उस पर वह सम्मति देने के लिये नहीं जाती है। ऐसे कठिन विषय में जनता के बहुत ही थोड़े व्यक्तियों का प्रवेश होता है अतः उस पर सम्मति देने के लिये भी बहुत ही थोड़े व्यक्ति जाते हैं और यह उचित भी प्रतीत होता है। दूसरा आक्षेप जन-सम्मति-विधि पर यह किया जाता है कि जनता को पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं हैं जिन से वह किसी विषय पर गंभीर तौर पर अपनी सम्मति को बना लेवे। यह आक्षेप बहुत कुछ सत्य है। परंतु इस दूषण को दूर करने के लिये स्विस् राज्य ने जो कुछ यत्न किया है वह भी सराहनीय है। राज्य, उन प्रस्तावों को अपने प्रेस द्वारा छपवा कर जनता के पास भेज देता है जिन पर कि उसे 'जन-सम्मति' लेनी होती है। इस कार्य में राज्य का बहुत धन खर्च होता है। गणना से पता लगा है कि राज्य के १३०००० फ्रैंक् (७७००० रु०) के लगभग केवल इसी कार्य में व्यय होते हैं। प्रस्तावों की मुद्रित प्रति मिलने से विषय जनता के सामने आ जाता है और उसके समझाने के लिये

अभी तक कोई साधन स्विस्-राज्य को नहीं सूझा है। तीसरा आक्षेप इस विधि पर यह किया जाता है कि इस विधि के प्रचलित होने से यह बहुत संभव है कि कालांतर में जनता के प्रतिनिधि राज्यकार्य में अपना उत्तरदातृत्व बहुत ही कम समझने लगें। परंतु यह आक्षेप कहाँ तक सत्य है इसका निर्णय करना अत्यंत कठिन है। क्या होगा यह कौन कह सकता है। जो कुछ सामने है वह तो यही है कि अभी तक स्विट्ज़लैंड में यह दशा नहीं हुई है। प्रातिनिधि राज्यकार्य में बहुत कुछ अपने उत्तरदातृत्व को समझते हैं। इस प्रकार यह दिखाया जा चुका है कि जन-सम्मति-विधि पर क्या क्या आक्षेप भिन्न भिन्न विद्वानों की ओर से किए जाते हैं। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि स्विटजलैंड में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो कि इस विधि का मूलोच्छेदन करना चाहे। जो कुछ आक्षेप किए जाते हैं वे केवल इसीलिये कि यह विधि जनता के लिये अतिशय लाभकर है। अतः इसमें जो दूषण हैं उन्हें भी किसी प्रकार से दूर कर दिया जाय। इस विधि के कारण ही स्विट्ज़लैंण्ड की शासनपद्धति सब देशों की अपेक्षा आदर्श शासनपद्धति समझी जाती है। महाशय ड्राज जैसे राजनीतिज्ञ तथा योग्य विद्वान् का कथन है कि जनसम्मति की विधि स्विट्ज़लैंड में अभी तक बहुत ही बुद्धिमत्ता से काम में लाई गई है। अतः इसने हानि की अपेक्षा लाभ ही बहुत कुछ उस देश को पहुँचाया है। मनुष्यों के प्रत्येक कार्य के सदृश यह भी अपूर्ण ही है। जो कुछ हम लोगों को करना चाहिए वह केवल यही है कि इसके परित्याग

की अपेक्षा इसके दूषणों के दूर करने का ही विशेषत: यत्न हो। जन-सम्मति-विधि ने स्विट्-राष्ट्र-संघटन को बहुत ही अधिक लाभ पहुँचाया है।

बाधित तथा अबाधित जनसम्मति पर जो कुछ लिखना था लिखा जा चुका है, अब नियामक जनसम्मति पर भी मैं कुछ लिख देना आवश्यक समझता हूँ। बाधित तथा अबाधित जनसम्मति की विधि एक मात्र निषेधात्मक है अर्थात् इस विधि के द्वारा जो कुछ स्विस्‌जनता कर सकती है वह केवल यही है कि अपने प्रतिनिधियों द्वारा पास किए हुए नियमों को चाहे राज्य में प्रचलित करे, चाहे प्रचलित होने से रोक दे। परंतु स्विस् विद्वानों की सम्मति है कि प्रजासत्तात्मक राज्य तब तक पूर्ण नहीं हो सकता है जब तक जनता का नियम-निर्माण में पूर्ण तौर पर हाथ न हो। अत: इस बात की पूर्णता के लिये भी वहाँ एक विधि प्रचलित की गई है जिसे नियामक-जन-सम्मति-विधि (The initiative) के नाम से प्राय: कहा जाता है। नियामक-जन-सम्मति-विधि के अनुसार जातीय सभाओं के सभ्यों के विरुद्ध भी कुछ व्यक्ति एक नियम बनाते हैं तथा उस पर बहुत से व्यक्तियों के हस्ताक्षर करवा कर राज्य के पास भेज देते हैं। राज्य उस नियम को अपनी नियामक सभाओं में भेजता है। यदि वह नियम पास हुआ तब तो कोई बात नहीं है, वह राज्य नियम हो ही गया जो कि जनता को अभीष्ट था। परंतु यदि वह नियम वहाँ पास न हो तब राज्य उस नियम पर जनसम्मति लेता है। यदि जनसम्मति

उस नियम को पास कर दे तब वह राज्यनियम हो जाता है तथा राज्य को अपनी सम्मति के विरुद्ध भी उस पर कार्य करना ही पड़ता है। कई बार ऐसा होता है कि प्रार्थनापत्र भेजनेवाले साधारण तौर पर किसी नियम के सुधार का ही जिक्र करते हैं परंतु जब जनता सुधार करना स्वीकार कर लेती है तब प्रार्थीजन या राज्य कोई उस नियम को सुधार कर पुनः जनता में पेश करते हैं तथा वहाँ से पास होने पर वह सुधार राज्यनियम का रूप धारण कर लेता है। यहाँ पर यह स्मरण रखना चाहिए कि मुख्य राज्य के किसी प्रस्ताव पर 'नियामक-जन-सम्मति' लेने के लिये पचास हजार पुरुषों का प्रार्थना पत्र पर हस्ताक्षर करना आवश्यक है। जूरिच राष्ट्र का नियम है कि पाँच हजार लोग जिस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर के भेजें वह प्रस्ताव राज्य को नियामक-जन-सम्मति के लिये भेजना पड़ता है। इसी प्रकार 'नियामक-जन-सम्मति' को किसी प्रस्ताव के संबंध में विचार करवाने के लिये भिन्न भिन्न राष्ट्रों की ओर से हस्ताक्षर करनेवालों की भिन्न भिन्न संख्या नियत है।

स्विस्-राष्ट्र-संघटन की शासनपद्धति के अंग।

१८४८ में स्विस् शासनपद्धति के निर्माताओं ने अमेरिकन शासनपद्धति के अनुसार ही अपने देश की शासनपद्धति का निर्माण किया। उन्हें यह पसंद न था कि वे भी अपने देश में साम्राज्य के शासन का संपूर्ण अधिकार एक प्रधान के ही हाथ में दे दें। अतः उन्होंने प्रधान के स्थान पर एक 'राष्ट्रीय उपसमिति' का निर्माण किया। राष्ट्रीय उप-

समिति में उन्होंने सात सभ्य रखे और उनमें से किसी दो का एक-राष्ट्रीय होना सर्वथा निषिद्ध किया। स्विस् शासनपद्धति के निर्माताओं ने यहीं पर बस न की। उन्होंने राष्ट्रीय उपसमिति की शक्ति भी इस बात से न्यून कर दी कि उसे प्रतिनिधि सभा का ही एक अंग बना दिया। इस प्रकार उन विद्वानों ने स्विस् शासनपद्धति के जो मुख्य मुख्य अंग बनाए वे ये हैं।

(१) प्रतिनिधि सभा, (२) राष्ट्रसभा, (३) जातीय सभा, (४) राष्ट्रीय उपसमिति, (५) न्याय सभा।

अमेरिकन शासनपद्धति को सामने रख कर ही स्विस् शासनपद्धति का निर्माण किया गया है, यह अभी लिखा जा चुका है। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि दोनों देश की शासनपद्धतियाँ कार्य में एक दूसरे से सर्वथा ही विपरीत हैं। स्विस् शासनपद्धति प्रबल है और अमेरिकन शासनपद्धति दुर्बल है और जहाँ द्वितीय प्रबल है वहाँ प्रथम दुर्बल है। दृष्टांत के तौर पर अमेरिकन शासनपद्धति में राष्ट्रसभा तथा न्याय सभा प्रशंसा के योग्य समझी जाती है परंतु स्विस् शासनपद्धति में येही दोनों निर्बल समझी जाती हैं। स्विस् शासनपद्धति में राष्ट्रीय उपसमिति तथा प्रतिनिधि सभा सराहनीय है पर अमेरिकन शासनपद्धति में वे अप्रशंसनीय हैं। सारांश यह है कि दोनों ही देशों में शासनपद्धति के उन उन अंगों ने सफलता से काम किया है जो कि उनकी स्वजातीय हैं।

स्विस् प्रतिनिधि सभा के सभ्यों की संख्या १४७ है। इसमें

राष्ट्र द्वारा विभक्त ५२ प्रांतों से प्रतिनिधि आते हैं। स्विट्जरलैंड में जनसंख्या तथा प्रतिनिधि का अनुपात १: २०००० है। बीस हजार से कम जनसंख्यावाले राष्ट्रों को एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है और यदि किसी राष्ट्र की इतनी जनसंख्या हो कि उसे २० हजार से भाग देने पर १० हजार से ऊपर शेष बचता हो तो उसे एक और प्रतिनिधि भेजने का अधिकार पाप्त हो जाता है। प्रानिनिधि सभा का एक बार जो प्रधान या उपप्रधान होता है वही अगली बार उस पद पर नहीं चुना जा सकता है। यही नियम राष्ट्र के साथ भी है। अर्थात् एक राष्ट्र का जो एक बार प्रधान या उपप्रधान हो तो दूसरी बार उसी राष्ट्र का व्यक्ति उस पद पर नहीं चुना जा सकता है।

प्रतिनिधि सभा।

स्विस राष्ट्रसभा में पूर्ण राष्ट्र के दो सभ्य आते हैं और अर्धराष्ट्र का केवल एक ही सभ्य आता है। स्विस राष्ट्रसभा का निर्माण अमेरिकन राष्ट्रसभा को देख कर किया गया था। परंतु कुछ कारणों से दोनों ही एक दूसरे से सर्वथा भिन्न भिन्न हैं। स्विट्जलैंड में राष्ट्रसभा का जो पूर्व मान्य था वह अब नहीं रहा है। भिन्न भिन्न दलों के नेता अब प्रतिनिधि सभा में जाना अधिक लाभदायक समझते हैं। यह क्यों ? यह इसीलिये कि राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्य प्रायः प्रतिनिधि सभा से ही चुने जाते हैं तथा उसके कार्य के निरीक्षण आदि के करने में प्रतिनिधि सभा ही अधिक शक्तिशालिनी है। राष्ट्रसभा के

राष्ट्रसभा।

कुल मिला कर ४४ सभ्य हैं। ये २२ राष्ट्रों द्वारा चुन कर आते हैं। राष्ट्रसभा में प्रतिनिधियों को भेजने, उनकी तनखाहों को देने तथा प्रतिनिधियों के स्वराष्ट्र संबंधी मामलों में राष्ट्रसंघटन के नियम नहीं लगते हैं। अपितु भिन्न भिन्न राष्ट्रों के अपने अपने नियम ही इन मामलों में काम करते हैं। एक राष्ट्र अपने प्रतिनिधि को ४ वर्ष के लिये भेजता है और दूसरा राष्ट्र केवल एक ही वर्ष के लिये। भिन्न भिन्न राष्ट्रों में राष्ट्रसभा के प्रतिनिधियों के चुनने का तरीका भी भिन्न भिन्न है। राष्ट्रसभा के प्रधान, उपप्रधान के चुनाव में प्रतिनिधि सभा के ही नियम लगते हैं।

दोनों सभाओं के कार्य।

दोनों सभाओं के स्विस् शासनपद्धति के अनुसार निम्नलिखित कार्य कहे जा सकते हैं—

(१) (क) विदेशीय राष्ट्रों के साथ संधि आदि करना।

(ख) शांति या युद्ध की उद्घोषणा करना।

(ग) राष्ट्रसंघटन की सेना का प्रबंध करना।

(घ) स्विट्जलैंड की युद्धों में उदासीनता तथा बाह्य स्वरक्षिता को करना।

(२) (च) राष्ट्रों के अधिकारों के विरुद्ध राष्ट्रसंघटन के अधिकारों को स्वरक्षित रखना।

(छ) देश की अंतरीय स्वरक्षता तथा शांति के लिये भिन्न भिन्न नियमों का पास करना तथा भिन्न भिन्न कार्यों का करना।

(ज) राष्ट्रसंघटन की शासनपद्धति के अनुसार

राष्ट्रों के लिये तथा राष्ट्रसंघटन के लिये भिन्न भिन्न नियमों का बनाना।

(३) (झ) आयव्यय का बजट बनाना।

(ट) साम्राज्य के शासन के लिये भिन्न भिन्न राजकीय विभागों पर राज्यधिकारियों को नियत करना तथा उन का वेतन आदि निश्चय करना।

(४) राष्ट्रीय उपसमिति के कार्यों का निरीक्षण करना तथा उपसमिति के शासन संबंधी निर्णयों के विरुद्ध शिकायतों का निर्णय करना।

(५) जन-सम्मति-विधि द्वारा राष्ट्रसंघटन की शासन-पद्धति में परिवर्तन करना तथा उस का सुधारना।

जातीय सभा। दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन जातीय सभा के रूप में जब होता है, तब उस के अधिकार भी भिन्न हो जाते है। वे ये हैं—

(१) (क) राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्यों को नियत करना।

(ख) राष्ट्रीय न्यायांधीश, महामंत्री तथा राष्ट्रीय सेना के सेनापतियों को नियत करना।

(२) अपराधियों को क्षमा प्रदान करना।

(३) राष्ट्रीय अधिकारियों की पारस्पारिक कलह को शांत करना इत्यादि।

प्रतिनिधि सभा का प्रधान ही इस का प्रधान होता है

तथा उसी के नियम ही जातीय सभा के कार्यक्रम के लिये काम में आते हैं।

राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्यों का चुनाव जातीय सभा द्वारा होता है। सभ्यों का चुनाव केवल तीन ही वर्ष के लिये होता है। परंतु यदि जातीय सभा के सभ्यों का चुनाव तीन वर्ष से पूर्व ही हो जाय तो इसके सभ्यों का चुनाव भी बीच ही में हो जाता है।

राष्ट्रीय उपसमिति।

सारांश यह है कि उपसमिति का जन्म मरण जातीय सभा के साथ हुआ करता है; क्योंकि वही इस की चुननेवाली है। उपसमिति के सात सभ्य होते हैं और राष्ट्रकार्य भी सात ही विभागों में विभक्त है। इस प्रकार एक एक सभ्य को एक एक विभाग का शासन मिल जाता है। भिन्न भिन्न विभागों का प्रधान ही राष्ट्रीय उपसमिति का सभ्य हुआ करता है। संपूर्ण विभागों के कार्य को निरीक्षण करने के लिये उन्हीं में से किसी एक को प्रधान के तौर पर चुन लिया जाता है। उपप्रधान भी उन्ही में से किसी को नियत कर लिया जाता है जो कि प्रधान को समय समय पर सहायता पहुँचाता रहता है। उपसमिति के प्रधान, उपप्रधान के चुननेवाली एक मात्र जातीय सभा ही है। प्रधान तथा उपप्रधान प्रति वर्ष बदलते रहते हैं। एक ही व्यक्ति को दूसरी बार उस पद पर नहीं चुना जाता। स्विट्जलैंड में यह एक रीति सी चल गई है कि उपप्रधान को ही अगले वर्ष प्रधान के तौर पर चुन लिया जाता है तथा इस प्रकार क्रमशः उपसमिति के प्रत्येक सभ्य को इस

पद पर आने का अवसर मिलता रहता है। प्रधान के शासन संबंधी अधिकार उपसमिति के सभ्यों के तुल्य ही हैं। अपने साथियों की अपेक्षा जो विशेष कार्य प्रधान के हाथ में है वह केवल यही है कि वह अपने साथियों के कार्यों से सदा परिचित रहता है तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम को सुचारु रीति पर चलाने के लिये प्रधान का पद ग्रहण करता है। १८८८ में प्रधान को विदेशीय विभाग का कार्य सुपुर्द किया गया था परंतु इसके लिये जब स्थिरता की आवश्यकता हुई तब यह निश्चित हुआ कि प्रधान जिस विभाग के कार्य को अपने हाथ में लेना चाहे ले ले। स्विट्जर्लैंड में राजकार्य के सात विभाग हैं यह पूर्व ही लिखा जा चुका है उनके नाम निम्नलिखित हैं।

(१) विदेशीय विभाग
(२) न्याय तथा पुलिस विभाग
(३) कृषि विभाग तथा व्यवसाय विभाग
(३) युद्ध विभाग
(५) आयव्यय विभाग
(६) डाक तथा रेल विभाग
(७) अंतरीय (गृह्य प्रबंध) विभाग

उपसमिति के कार्य बहुत से हैं। उपसमिति के बहुत से न्यायालय संबंधी कार्य हैं और शासन संबंधी कार्य भी उसके पास पर्याप्त हैं। स्विट्जर्लैंड में यद्यपि मुख्य न्यायालय है जिसमें राज्यनियम संबंधी झगड़े भेजे जाते हैं, परंतु कुछ शासनसंबंधी विवाद उसके हाथ से ले कर

जातीयसभा ने उपसमिति के सुपुर्द कर दिए हैं। इसमें संदेह नहीं है कि उपसमिति न्याय करने में केवल न्याय का ही ध्यान नहीं रखती वरन राजनीति का भी ध्यान रखा करती है। परिणाम इसका यह होता है कि बहुत से उसके निर्णय दूसरों को निर्णय नहीं प्रतीत हो सकते हैं। यहाँ पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि यदि स्विट्जलैंड की शासक राष्ट्रीय उपसमिति न्याय वितरण का भी काम करती है तो वह स्वेच्छाचारिणी क्यों नहीं हो जाती है, क्योंकि जहां कहीं शासन तथा न्याय का कार्य एक ही व्यक्ति के हाथ में सुपुर्द कर दिया जाता है वहां ऐसा होना संभव है। इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि स्वतंत्रता देवी की उपासक स्वतंत्र जातियों में यह घटना प्रायः नहीं होती है। और यदि कभी ऐसी वात होनेवाली भी हो तो भी अखबारों, पुस्तकों, तथा जनता के विक्षोभों का शासकों को इतना भय होता है कि वे प्रायः ऐसा करने का साहस ही नहीं करते। युरोप के अन्य देशों में 'अंतरीय या गृह्य विभागों' के मंत्री जब कभी स्वेच्छाचारित्व प्रकट करते हैं तो उसका कारण यह होता है कि उनके हाथ में असीम शक्ति दे दी जाती है। परंतु स्विस्-राष्ट्रसंघटन में यह कब संभव है ? उपसमिति के सभ्य जो कुछ काम करते हैं वह केवल यही है कि वे देखें कि प्रबंधकर्त्ता लोग नियमों को कार्य में उचित विधि पर लाते हैं या नहीं। उपसमिति के सभ्य राष्ट्रीय प्रबंधकर्त्ताओं के साथ बहुत कुछ प्रेम से व्यवहार करते हैं, तथा बड़ी बुद्धिमता से प्रत्येक नियम के भावों को समझ कर काम करते हैं। यदि

कभी किसी राष्ट्र से उपसमिति के सभ्यों का झगड़ा हो जाय तथा वह राष्ट्र जातीय-नियमों को पालन करने के लिये उद्यत न हो तो उपसमिति उस राष्ट्र में जातीय सेना को पहुँचा देती है जो कि बिना किसी प्रकार के उत्पात के वहीं पर रहने लगती है। इस सेना का व्यय उसी राष्ट्र पर ही पड़ता है जिसमें वह शांति के लिये जाती है। परिणाम इसका यह है कि प्रायः स्विस् राष्ट्र इस आर्थिक व्यय के भय से राष्ट्रसंघटन के नियमों का अतिक्रमण ही नहीं करते।

स्विट्जलैंड में शासन का नियम के साथ संबंध सब सभ्य जातियों से भिन्न है। राष्ट्रीय उपसमिति शासन के विषय में जातीय सभा के अधीन है। जातीय सभा ने अभी तक उपसमिति के शासन संबंधी किसी कार्य को सर्वथा पल्टा नहीं है। उपसमिति प्रत्येक वर्ष अपनी वार्षिक कार्रवाई जातीय सभा में पढ़ती है और जातीय सभा उसके कार्यों की समालोचना करती है तथा उन उन कार्यों पर अपनी सम्मति प्रगट करती है जिनसे उसकी असहमति होती है, जिससे भविष्यत् में उन कार्यों के शासन में ध्यान रखा जाय।

राष्ट्रीय उपसमिति की तुलना अंग्रेजी मंत्रिसभा की उपसमिति से भी की जा सकती है। यद्यपि स्विस् उपसमिति के सभ्य जातीय सभा की किसी भी सभा के सभ्य नहीं होते हैं परंतु दोनों ही सभाओं में उन्हें बोलने का पूर्ण अधिकार मिला है। इस प्रकार वे लोग राज्यनियम निर्माण में अपना पूरा पूरा प्रभाव डाल सकते हैं और डालते भी हैं। स्विस् उपसमिति जातीय सभा की सम्मति पर बहुत से प्रस्ताव

बनाती है जो कि जातीय सभा में पास किए जाते हैं। वास्तव में बात तो यह है कि राष्ट्र के प्रायः संपूर्ण नियम जातीय सभा में पास करवाने के लिये भेजने से पूर्व एक बार इसके हाथों से अवश्यमेव गुजरते हैं। इस प्रकार शासन तथा नियम का संबंध अँग्रेजी मंत्रिसभा की उपसमिति के सदृश स्विस् उपसमिति में भी अत्यंत समीप ही है, परंतु यहाँ पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दोनों देशों की उपसमितियों के ही ये संबंध किसी भिन्न भिन्न सिद्धांतों पर आश्रित हैं। स्विस् उपसमिति किसी भी प्रस्ताव के पास न होने पर इस्तीफ़ा नहीं देती है। इसके विपरीत यदि जातीय सभा शासन या नियम संबंधी किसी कार्य में अपना मतभेद प्रकट करे तो स्विस् उपसमिति अपनी सम्मति के विरुद्ध भी जातीय सभा की सम्मति पर बड़ी प्रसन्नता से कार्य करती रहती है। स्विस् उपसमिति के सभ्यों में यह सिद्धांत काम करता रहता है कि वे जातीय सभा के सामने जब कोई प्रस्ताव पेश करते हैं तो वह इसीलिये करते हैं कि जातीय सभा को शासन या नियम के विषय में एक उचित सलाह मिल सके, न कि इसलिये कि वे संपूर्ण शासन के जिम्मेवार हैं। अतः यह उचित नहीं है कि जातीय सभा को उनकी सम्मति पर ही चलना चाहिए तथा यदि जातीय सभा उनकी सम्मति पर चलने को तैय्यार न हो तो वे राष्ट्र के शासन की जिम्मेवारी लेने में असमर्थ हैं अतः वे इस्तीफा दे दें। इस दशा में जातीय सभा दूसरे व्यक्तियों की उपसमिति बनावे जिनकी सम्मति जातीय

सभा की सम्मति से मिलती हो और जो राष्ट्र के कार्य की जिम्मेवारी ले लें। यही सिद्धांत है कि जिस पर स्विस् उपसमिति कार्य करती हुई अपनी इच्छाओं के विरुद्ध होते हुए भी कई एक बातों पर जातीय सभा की सम्मति पर कार्य करती रहती है तथा अपना पदत्याग नहीं करती। १८४८ से ले कर अब तक केवल दो ही बार उपसमिति के सभ्यों ने इस्तीफ़ा दिया है जिसमें केवल एक दो बार नियम संबंधी झगड़े के ऊपर उपसमिति ने इस्तीफ़ा दिया था। स्विस् विद्वानों की सम्मति में राष्ट्र के लिये यह अविवेचनापूर्ण बात है कि उपसमिति के सभ्यों को सम्मति विसंवाद के कारण इस्तीफ़ा दे देना पड़े जब कि उन में शासन संबंधी अनेकों गुण विद्यमान हों।

स्विस् उपसमिति को एक प्रकार से प्रबंधकारिणी सभा भी कह सकते हैं। इसके सभ्यों के चुनाव में प्रायः उनकी प्रबंध या शासन की शक्ति ही मुख्य तौर पर देखी जाती है तथा उनमें यह नहीं देखा जाता है कि वे राजनैतिक नेता हैं वा नहीं। स्विस् उपसमिति का एकमात्र कार्य यह है कि स्विट्ज़र्लैंड का शासन उचित विधि पर किया जाय तथा समय समय पर नियमों के विषय में जातीय सभा को उचित सलाह दी जाया करे। उपसमिति से जातीय सभा यह आशा नहीं करती है कि वह राष्ट्र की राजनीति को अपने ही हाथ में कर ले और इसी बात में उपसमिति की राष्ट्र में क्या स्थिति है इसका रहस्य छिपा हुआ है। प्रायः भिन्न भिन्न दलों में से ही उपसमिति के सभ्य चुने जाते

हैं पर विचित्रता यह है कि इस पर भी उपसमिति का कार्य बहुत ही अच्छी तरह पर चलता है जब कि उनके प्रत्येक सभ्य की आपस में सम्मति एक नहीं होती। इसका कारण यही है कि उपसमिति के सभ्य अपने कार्य में स्वतंत्र नहीं हैं। वे तो जातीय सभा के एक प्रकार सेवक हैं। जो कुछ भी हो। यह स्विट्जलैंड की ही विशेषता है कि वहाँ राष्ट्रीय उपसमिति के सभ्य बड़ी दूरदर्शिता से तथा निष्पक्षपात से अपना कार्य करते हैं। वे लोग भिन्न भिन्न दलों में से चुन कर आते हैं पर वे लोग अपने आपको दलों के सिद्धांतों में ही एकमात्र नहीं जकड़े रखते हैं। उपसमिति के सभ्यों का यह विशेष गुण समझना चाहिए कि वे लोग जातीय सभा में बड़ी बुद्धिमता से भिन्न भिन्न दलों के विचारों की भिन्नता को मिटाते हुए राज्यकार्य को बड़ी शांति से चलाते हैं।

उपसमिति के वे ही सभ्य प्रायः बारंबार चुने जा सकते हैं, और प्रायः ऐसा होता भी है। १८४८ से १८९३ तक कुल मिला कर ३१ व्यक्ति उपसमिति के सभ्य बन चुके थे जिनमें से ७ अभी उस समय कार्य भी कर रहे थे। गणना से प्रत्येक व्यक्ति के कार्य की मध्यमा १० वर्ष निकली है। वास्तव में बात तो यह है कि १५ सभ्य लगभग १५ वर्ष से ऊपर तक काम कर चुके थे तथा ४ सभ्य २० वर्ष से ऊपर तक और एक सभ्य ने तो ३० वर्ष से ऊपर तक राष्ट्र की सेवा की थी।

उपसमिति का जब कोई सभ्य मर जाता है वा इस्तीफा

दे देता है उस समय उसके स्थान पर जातीय सभा किसी दूसरे व्यक्ति को सभ्य के तौर पर चुन कर भेज देती उपसमिति के सभ्यों को प्रायः कार्य बहुत ही अधिक करना पड़ता है। बहुत से यत्न किए जा रहे हैं जिससे सभ्यों के परिश्रम को कम किया जाय। इस प्रकार राष्ट्रीय उपसमिति पर जो कुछ लिखना था लिखा जा चुका। अब हम कुछ शब्द स्विस् न्यायालय विभाग पर लिख देना आवश्यक समझते हैं।

न्यायालय विभाग।

स्विट्जलैंड का न्यायालय विभाग एक विचित्र प्रकार का है। वहाँ मुख्य न्यायालयों के साथ साथ राष्ट्रीय न्यायालय अपना कार्य बहुत ही अच्छी तरह से संपादन करते हैं। मुख्य न्याया-लय के अतिरिक्त जातीय सभा तथा राष्ट्रीय उपसमिति भी वहाँ न्याय संबंधी कार्य को करती है। स्विट्जलैंड में प्रत्येक सभा के कार्यों की सीमाएँ शासन-पद्धति द्वारा पूर्ण तौर पर निर्दिष्ट हैं। १८४८ में मुख्य न्याया-लय की शक्ति बहुत कम थी। १८७४ की निमय धारा से उसे भी मुख्य शक्ति मिल गई।

फौजदारी मुकदमों के निर्णय के लिये मुख्य न्यायालय सारे प्रांतों में भ्रमण करता है। न्यायालय के भ्रमण की दृष्टि से संपूर्ण स्विट्जलैंड पाँच भागों में विभक्त है जिनमें बारी बारी से मुख्य न्यायालय चक्कर लगाता है। वे भाग निम्नलिखित हैं।

(१) फ्रेंच स्विट्जलैंड

(२) वर्न तथा उसके चारों ओर का प्रदेश

(३) जूरिच तथा उसके समीपवर्त्ती राष्ट्र
(४) मध्य तथा पूर्वीय स्विट्जलैंड का कुछ भाग
(५) इटैलियन स्विट्जलैंड

मुख्य न्यायालय निम्नलिखित विषयों में निर्णय करता है—

१. (क) अंतर-राष्ट्रीय विषय ।
(ख) राष्ट्रों की सीमा का निश्चय ।
(ग) राजकीय अधिकारियों के राज्यनियम संबंधी झगड़ों का निर्णय ।
(घ) शासनपद्धति से निश्चित नागरिकों के अधिकार संबंधी झगड़े ।

मुख्य न्यायालय के हाथ में यह शक्ति नहीं है कि वह शासनपद्धति के अनुकूल या प्रतिकूल किसी भी राज्यनियम को प्रकट करे । जनता ने यह शक्ति अपने ही हाथ में ली है। इसमें निम्नलिखित विषय सम्मिलित हैं ।

२. (क) राष्ट्रों की भिन्न भिन्न समितियों के साथ झगड़े ।
(ख) राष्ट्रों के राष्ट्रों के प्रति झगड़े ।
(ग) राष्ट्रसंघटन तथा राष्ट्रों के झगड़े ।

३. (क) राष्ट्रीय अधिकारियों के प्रति विद्रोह या षड्यंत्र ।
(ख) अंतर्जातीय नियमों का भंग ।
(ग) बड़े बड़े राजनैतिक अपराध ।

राष्ट्रीय उपसमिति के अधिकार में इन विषयों का निर्णय है ।
(क) राष्ट्रीय सेनाओं के एकत्रित करने के विषय में ।
(ख) राष्ट्रीय विद्यालयों की शिक्षापद्धति संबंधी विषयों में ।

(ग) व्यापार की स्वतंत्रता
(घ) आगत कर (Import duties)
(ङ) व्यय कर (Consumptive taxes)
(च) धार्मिक स्वतंत्रता
(छ) राष्ट्रीय सभ्यों के चुनाव का औचित्य, अनौचित्य इत्यादि ।

१०

सातवाँ परिच्छेद ।

इंग्लैंड ।

अंग्रेजी शासन-पद्धति के अंग ।

अंग्रेजी शासनपद्धति में निम्नलिखित अंग ध्यान देने योग्य हैं ।

(१) राजा
(२) मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति
(३) गुप्तसभा
(४) प्रतिनिधि सभा
(५) लार्ड सभा

राजा की शक्ति तथा अधिकार ।

इंग्लैंड में बड़ी बड़ी उपाधियों को देना, लार्ड बनाना, नौ तथा स्थल सेना के मुख्य मुख्य अधिकारियों को नियत करना, मुख्य न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट, बिशप, आर्चबिशप तथा अन्य मुख्य मुख्य राज्यकर्मचारियों को भिन्न भिन्न राजकार्य विभागों में प्रबंधादि के लिये नियत करना राजा के ही हाथ में है। यद्यपि इनमें से बहुत से कार्य वह राजमंत्री द्वारा ही कराता है, तौ भी उसके ये अधिकार कुछ कम नहीं कहे जा सकते हैं। मंत्रिसभा की उपसमिति की सहमति से वह अन्य भी बहुत से अधिकारों को कार्य में ला सकता है परंतु इसका उत्तरदातृत्व उपसमिति पर ही होता है न कि राजा पर। इंग्लैंड में राजा बनने का अधिकार पूर्व राजा के

बड़े पुत्र को ही है और उसका प्रोटस्टैंट मत का होना भी आवश्यक है। प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन बुलाना, उसको कुछ समय के लिये बंद कर देना तथा यदि आवश्यकता पड़े तो उसे पुनः नवीन ढंग पर चुनाव के लिये प्रेरित करना आदि कार्य राज के ही हाथ में हैं। यही नहीं वरन् उपसमिति की अनुमति ले कर राजा युद्ध भी उद्घोषित कर सकता है। राज्ञी विक्टोरिया के अधिकारों पर निरीक्षण करते हुए महाशय बैज्हाट ने लिखा था कि राज्ञी संपूर्ण सेना के हथियार रखवा सकती है, लगभग सब के सब राज्याधिकारियों को पदच्युत कर सकती है, सब जहाजों को बेंच सकती है, कार्नवाल को दे कर संधि कर सकती है और ब्रिटेनी की विजय के लिये युद्ध को आरंभ कर सकती है, सब अपराधियों के अपराध क्षमा कर सकती है, और सब से अधिक बात तो यह है कि वह इंग्लैंड के सब मनुष्यों को लार्ड बना सकती है। सारांश यह है कि राज्ञी अंग्रेजी शासनपद्धति के अनुसार चलती हुई इंग्लैंड के अंतरीय प्रबंध को उलट पुलट सकती है और एक बुरी संधि या लड़ाई करके सारी जाति को अपमानित कर सकती है तथा नौ सेना और स्थल सेना से हथियार रखवा कर सारे के सारे देश को अरक्षित कर सकती है। महाशय बैज्हाट के उपरिलिखित कथन से स्पष्ट हो गया होगा कि शासनपद्धति के अनुसार अंग्रेजी राजा के क्या अधिकार तथा क्या शक्तियाँ हैं। अब हम अंग्रेजी मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति की पर्यालोचना करेंगे।

इंग्लैंड में राजा तथा प्रजा दोनों ही शासक हैं। मंत्रि-

सभा अपने प्रत्येक कार्य के लिये प्रतिनिधि सभा के आगे उत्तरदायिनी है और इसीमें उसकी शक्ति समझनी चाहिए, क्योंकि यदि वह राजा के प्रति जिम्मेवार होती तब तो इंग्लैंड की शासनपद्धति में राजा की शक्ति अनंत हो जाती। अंग्रेजी शासनपद्धति में जो कुछ विचित्र बात है वह यही है कि महामंत्री राजा द्वारा चुना जाता है पर उसका उत्तरदातृत्व उसके प्रति नहीं रहता अपितु प्रतिनिधिसभा के प्रति होता है। अंग्रेजी राजा विजयी दल के किसी मुख्य व्यक्ति को (उसकी स्वीकृति ले कर) महामंत्री बना देता है। महामंत्री अपनी इच्छा के अनुसार अपनी एक मंत्रिसभा बनाता है जिसका प्रत्येक सभ्य उसके साथ बहुत सी बातों में प्रायः सहमत होता है। इंग्लैंड की शासनपद्धति में महामंत्री की शक्ति बहुत ही अधिक है। उसकी सम्मति के अनुसार ही नए नए व्यक्तियों को लार्ड बनाया जाता है, और साम्राज्य के प्रत्येक भाग के शासकों को नियत करना भी उसी की इच्छा पर है। मंत्रिसभा प्रायः अपना कार्य उपसमिति द्वारा ही किया करती है। उस उपसमिति के सभ्य प्रायः निम्नलिखित अधिकारियों में से ही होते हैं।

मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति।

(१) मुख्य कोषाध्यक्ष
(२) लार्ड सभा का प्रधान
(३) गुप्तसभा का प्रधान
(४) मुद्रा-सचिव

(५) आयव्यय सचिव
(६) पाँच राष्ट्रीय सचिव
(क) स्वदेश सचिव
(ख) विदेश सचिव
(ग) भारत सचिव
(घ) उपनिवेश सचिव
(ङ) युद्ध सचिव
(७) नौ सेनाधिपति
(८) आयलैंड का प्रधान
(९) स्काटलैंड का मंत्री
(१०) डाकखाना सचिव
(११) शिक्षा सचिव
(१२) कृषि सचिव
(१३) नागरिक सभा प्रधान
(१४) राज प्राड्विवाक
(१५) लंकास्टर की डची का चांसलर
(१६) राजकीय कार्यों का मुख्य निरीक्षक
(१७) आयलैंड के प्रधान का मुख्य मंत्री

परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि इंग्लैंड में यद्यपि मंत्रियों को मुख्य मंत्री ही नियत करता है परंतु उसके लिये उसे राजा की स्वीकृत लेनी पड़ती। महामंत्री के भिन्न भिन्न पदों के ग्रहण करने से उपसमिति के सभ्यों की उपरिलिखित २१ संख्या घटती बढ़ती रहती है। इंग्लैंड में उपसमिति ही राज्य का कार्य करती है तथा विरोधियों के आक्षेपों का उत्तर देती

है। उपसमिति के पराजय होने पर सबके सब मंत्रियों को अपना पद छोड़ देना पड़ता है तथा नवीन महामंत्री अपनी नई मंत्रिसभा तथा उपसमिति का निर्माण करता है।

अंग्रेजी शासनपद्धति में मंत्रिसभा की यह उपसमिति एक बड़ा भारी अंग है। गुप्तसभा के विषय में हम आगे चल कर लिखेंगे कि उसमें सभ्यों की संख्या बहुत अधिक होती है अतः वह राजा को उचित सम्मति देने के लिये अयोग्य है। आज कल गुप्तसभा का यह कार्य मंत्रिसभा की उपसमिति ही करती है। उपसमिति के कारण राज्यकार्य ठीक तौर पर चलता है और संपूर्ण कार्य की जिम्मेवारी ले लेने में भी वह समर्थ हो जाती है।

मुख्य मंत्री की राजनीति जब तत्कालीन प्रतिनिधि सभा को स्वीकृत न हो, उस दशा में मुख्य मंत्री राजा से प्रार्थना कर राजा द्वारा प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त करवा कर नए सिरे से चुनाव के लिये प्रेरित करता है। इस प्रकार करने से मुख्य मुख्य प्रश्नों पर तथा प्रस्तावों पर 'प्रजा की क्या सम्मति है' यह राज्य को पता लगता रहता है। यह हम पहले ही लिख चुके हैं कि मुख्य मंत्री को राजा ही नियत करता है।

जिस समय मंत्रिसभा तथा उसकी उपसमिति की रीति प्रचलित न हुई थी उस समय राजा जनता द्वारा मुख्य मंत्री पर आक्षेप किए जाने पर अपना अपमान समझ लिया करता था, क्योंकि मुख्य मंत्री को वही नियत किया करता था। अपने आदमी की रक्षा कौन नहीं करता है? परंतु मंत्रिसभा की

रीति से यह दूषण हट गया है। राजा अब एक निष्पक्षपात न्यायाधीश की स्थिति में है, जो कि जनता में जिस दल का नेता प्रबल हो उसी को राज्यभार सुपुर्द कर देता है और उसे इससे कुछ भी प्रयोजन नहीं होता है कि उसका कौन मित्र है तथा कौन मित्र नहीं है। प्रतिनिधि सभा तथा राजा को परस्पर मिलानेवाली संस्था भी मंत्रिसभा कही जा सकती है। अंग्रेजी राज्यनियमों के अनुसार राजा सदैव निर्भ्रांत तथा निर्दोष हुआ करता है। यह तभी हो सकता है जब कि राजा की किसी भी कार्य में जिम्मेंवारी न हो। मंत्रिसभा की प्रणाली से अब सब कार्यों का जिम्मेवार मंत्री ही हो गया है। यदि शासन में कुछ भी बुराई आती है तो मंत्री को ही पदच्युत होना पड़ता है तथा दूसरा मंत्री उसके स्थान पर शासन के लिये नियत कर दिया जाता है। सारांश यह है कि मंत्रिसभा की प्रणाली से अब ब्रिटेन का राजा सर्वप्रिय हो गया है। प्रजा में अब समालोचना यदि किसीकी होती है तो तात्कालिक मुख्य मंत्री तथा उसकी उपसमिति की ही।

फ्रांस में भी मंत्रिसभा है परंतु उसकी अंग्रेजी मंत्रिसभा से तुलना करना कठिन है। अंग्रेजी मंत्रिसभा के मंत्रियों के अधिकार बहुत कुछ रीति-रिवाजों पर निर्भर हैं और इसका कारण भी है। अंग्रेजी शासनपद्धति का जन्म आकस्मिक नहीं हुआ है, अपितु उसके प्रत्येक अंग को वर्त्तमानकालीन स्वरूप प्राप्त करने में पर्याप्त काल लगा है। इस दशा में लिखित अधिकारों की अपेक्षा रीति रिवाज का शासन-पद्धति में बहुत भाग होना स्वाभाविक है। फरासीसी शासनपद्धति का जन्म

आकस्मिक है, अतः वहाँ मंत्रियों के अधिकार शासन-पद्धति द्वारा निर्णीत तथा लिखित हैं। फ्रांस की जनता स्वतंत्रता की अत्यंत प्रेमी है। मंत्रियों की स्वेच्छाचारिता उसे पसंद नहीं है। परिणाम इसका यह है कि फरासीसी प्रतिनिधि सभा यदि फरासीसी मंत्रियों के किसी साधारण बात पर भी विरुद्ध सम्मति दे दे तो उन्हें अपना पद छोड़ना पड़ता है परंतु इंग्लैंड में यह दशा नहीं है। इंग्लैंड में मंत्रिसभा के पास पर्याप्त शक्तिशाली साधन विद्यमान हैं। अंग्रेजी मंत्रिसभा राजा की स्वीकृति से प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर पुनः चुनाव के लिये प्रेरित कर सकती है। फरासीसी मंत्रिसभा ऐसा करने में शक्ति रखते हुए भी असमर्थ है। प्रधान तथा राष्ट्रसभा की स्वीकृति से फरासीसी मंत्रिसभा, प्रतिनिधि सभा को बरखास्त कर सकती है, परंतु फरासीसी प्रधान नाममात्र का ही शासक होता है। वह प्रतिनिधि सभा को बर्खास्त कर अपने प्रति विरोध नहीं खड़ा करना चाहता। परिणाम इसका यह हो गया है कि फरासीसी मंत्रिसभा यद्यपि अंग्रेजी शासनपद्धति को देख कर बनाई गई थी तथापि अंग्रेजी मंत्रिसभा की अपेक्षा वह शक्ति में अत्यंत न्यून हो गई है। अंग्रेजी मंत्रिसभा का नियम-निर्माण में बड़ा भारी हाथ है। फ्रांस में नियम-निर्माण का कार्य प्रायः उपसमितियों के अधीन है। फल इस कार्य का यह है कि फरासीसी मंत्रिसभा अंग्रेजी मंत्रिसभा की अपेक्षा शक्तिहीन है।

फ्रांस में कुछ एक ऐसे और भी कारण हैं जिनसे फरासीसी मंत्रिसभा अंग्रेजी मत्रिसभा के सदृश काम करने में असमर्थ

हो गई है। फ्रांस में 'दलों के इतिहास' नामी शीर्षक में हमने विस्तृत तौर पर दिखाया है कि वहाँ पर बहुत से दल हैं। जितने बड़े बड़े व्यक्ति उस देश में विद्यमान हैं उतनी ही वहाँ दलों की संख्या है। विचित्रता यह है कि एक फरासीसी मंत्रिसभा पराजित हो कर जब टूटती है तो उसके बहुत से सभ्य प्राय: नवीन मंत्रिसभा में भी ले लिए जाते हैं। सारांश यह है कि फ्रांस तथा इंग्लैंड की मंत्रिसभा की रीति आपस में एक दूसरे से भिन्न है।

गुप्तसभा।

अंग्रेजी गुप्तसभा के निम्नलिखित व्यक्ति सभ्य होते हैं। (१) राजपरिवार के सभ्य, (२) कैंटरबरी का आर्चबिशप, (३) लंडन का बिशप, (४) लार्ड चांसलर, (५) मुख्य न्यायाधीश, (६) मुख्य बोर्ड्स का प्रधान, (७) प्रतिनिधि सभा का 'प्रवक्ता', (८) इंग्लैंड के राजदूत, (९) उपनिवेशों के शासक, (१०) इंग्लैंड का मुख्य सेनापति, (११) सब मंत्री, (१२) गुप्त सभा के सभ्य की उपाधिप्राप्त अन्य सब पुरुष।

गुप्तसभा का अधिवेशन राजप्रासाद में होता है। नए राजा की उद्घोषणा यही सभा करती है और प्रतिनिधि सभा के बर्खास्त करने तथा बुलाने के लिये राजा के द्वारा निकाले हुए घोषणापत्र इसीमें तय्यार होते हैं। इसकी कई एक उपसमितियाँ हैं जो कि भिन्न भिन्न राजकीय कार्यों का संपादन किया करती हैं। दृष्टांत के तौर पर 'न्याय उपसमिति' ही को लीजिए। इसके हाथ में भारत तथा उपनिवेशों की जनता की प्रार्थनाओं

को सुनना है। इसी प्रकार गुप्तसभा की 'शिक्षा उपसमिति' शिक्षा-संबंधी प्रबंध करती है। इसकी कृषि तथा व्यापार संबंधी उपसमितियाँ भी हैं जो कि अपने अपने विभाग का निरीक्षण तथा प्रबंध करती हैं।

इंग्लैंड की प्रतिनिधि सभा में जो आज कल सभ्यों की संख्या है वह सदा से उसमें नहीं चली आई है। समय समय पर सभ्यों की संख्या बढ़ते बढ़ते अब ६७० के लगभग है। इसमें किन किन प्रदेशों के कितने कितने सभ्य हैं इसका ब्योरा निम्नलिखित है–

प्रतिनिधि सभा।

इंग्लिश काउंटियाँ	२५३	सभ्य
इंग्लिश बरों	२३७	,,
इंग्लिश महाविद्यालय	५	,,
स्काच काउंटियाँ	३९	,,
,, बरों	३१	,,
,, महाविद्यालय	२	,,
आयरिश काउंटियाँ	८५	,,
,, बरों	१६	,,
,, महाविद्यालय	२	,,
	६७०	

प्रतिनिधि सभा के सभ्य ५ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। इंग्लैंड में प्रतिनिधियों का जनसंख्या से अनुपात १ : १५००० है। लार्ड, न्यायाधीश, रोमन कैथोलिक पादरी, राज्य-पदाधिकारी, राज्य-दंडित पुरुष, दिवालिए आदि तथा अन्य

कई प्रकार के ऐसे ही व्यक्तियों को छोड़ कर प्रतिनिधि सभा के सभ्य चुने जाने का प्रायः सभी अंग्रेजों को आधिकार है। यद्यपि सभ्य के तौर पर चुने जाने के लिये कोई शिक्षा तथा संपत्ति संबंधी कैद नहीं लगाई गई है परंतु संपत्ति के बिना प्रतिनिधि बनना भी कठिन ही है। क्योंकि इंग्लैंड में भी प्रतिनिधि सभा के सभ्य बनने में बहुत व्यय करना पड़ता है। इस दशा में निर्धनी पुरुषों का प्रतिनिधि सभा का सभ्य बन कर लंडन में निवास करना कठिन है। गणना से मालूम हुआ है कि सभ्यों का ५ पौंड के लग भग प्रति दिन व्यय होता है। यह शक्ति निर्धनियों के पास कहाँ है कि वे लोग इतना व्यय कर सकें।

कुछ वर्षों से प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को ६०००) रु० की वार्षिक वृत्ति मिलती है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि प्रतिनिधि के सभ्यों का समय पाँच वर्ष का है। परंतु अंग्रेजी शासनपद्धति में मंत्रिसभा की रीति ही मुख्य है। परिणाम इसका यह हुआ है कि अभी तक प्रायः कोई भी प्रतिनिधि सभा अपने पूर्ण समय तक विद्यमान नहीं रही है। औसत से जहाँ इसकी स्थिरता का समय चार वर्ष से भी कम निकलता है वहाँ पिछली सदी की लंबी से लंबी प्रतिनिधि सभा छ वर्ष, एक मास तथा बारह दिन तक ही विद्यमान रही थी।

प्रतिनिधि सभा अपना 'प्रवक्ता' आप चुनती है पर उसके क्लार्क तथा सार्जेण्ट एट् आर्मस राजा द्वारा चुने जाते हैं। प्रतिनिधि सभा का बहुत सा समय तो

मंत्रिसभा की उपसमिति के प्रस्तावों आदि के पास करने में लगता है। प्रतिनिधि सभा के सभ्यों के अपने वैय्यक्तिक अधिकार भी पर्याप्त हैं। फौजदारी मुकदमा, न्यायालय का अपमान, दिवाला आदि अपराधों को छोड़ कर अन्य किसी अपराध में प्रतिनिधि सभा का सभ्य पकड़ा नहीं जा सकता है। प्रतिनिधि सभा अपने सभ्यों को अपराध करने पर सभा से निकाल सकती है परंतु उन्हें पुनः चुने जाने से नहीं रोक सकती है। प्रतिनिधि सभा अपने विरुद्ध अपराध करनेवाले को कैद कर सकती है और यह कैद तात्कालिक प्रतिनिधि सभा के समय तक ही रहती है, आगे नहीं। वह अपने अधिकार स्वयं ही नहीं बढ़ा सकती है। सब प्रस्ताव पहले पहल इसी सभा में आते हैं। आय व्यय संबंधी बजट तो प्रतिनिधि सभा में ही पहले उपस्थित किया जाता है।

लार्ड सभा। — प्रतिनिधि सभा के सदृश लार्डसभा की संख्या बदलती रहती है, जिसका ब्योरा इस प्रकार है।

सन्	सभ्य
१२६५	१३९
१६००	५९
१७६५	२०२
१८५५	४४५
१८६५	४५४
१८९५	५७१
१८९७	५८०
१९००	५८६
१९०९	६१८
आजकल	६२२

लार्डसभा में भिन्न भिन्न श्रेणियों के व्यक्ति इस प्रकार हैं—

रायल	Royal	...	४
आर्चबिशप	Archbishops		२
ड्यूक	Dukes	...	२१
मार्किस	Marquesses	...	२३
अर्लज़्	Earls	...	१४०
वैकाउंट	Viscounts	...	४७
बिशप	Bishops	...	२४
बैरन	Barons	...	३६१
			६२२

भिन्न भिन्न प्रदेशों के सभ्य उपरिलिखित ६२२ सभ्यों में इस प्रकार विभक्त हैं।

इंगलैंड तथा वेल्स के पियर	...	५५२
,, ,, आर्चविशप्प	...	२
,, बिशप्	...	२४
स्काट्लैंड के पियर	...	१६
आयर्लैंड के पियर	...	२८
		६२२

लार्ड सभा के जहाँ समूहरूपेण अपने अधिकार हैं वहाँ प्रातिनिधि सभा के सदृश उसके व्यक्तियों को भी पर्याप्त अधि-

कार प्राप्त हैं, जो कि इस प्रकार गिनाए जा सकते हैं।

(१) लार्ड सभा अपने विरुद्ध अपराध करनेवालों को कैद तथा उन पर जुर्माना कर सकती है. (२) प्रत्येक लार्ड को सभा में वक्तृता देने की पूर्ण स्वतंत्रता है, (३) जब कोई नया लार्ड बनाया जाता है तब लार्ड सभा यह देखती है कि कहीं कोई गलती तो नहीं हुई है, (४) लार्ड सभा के पास अपीलें जाती हैं, (५) प्रतिनिधि सभा के राज्यकर्मचारियों के विरुद्ध अभियोग इसी सभा में होते हैं तथा यही निर्णय देती है, (६) नाबालिग, विदेशी, अविश्वासपात्र (जिसने वफादारी की शपथ न खाई हो) लार्ड सभा में नहीं बैठ सकता है, (७) कोई लार्ड सभा में नया प्रस्ताव पेश कर सकता है। प्रतिनिधि सभा के पास किए हुए प्रस्ताव इसी सभा में आते हैं और यदि यह न पास करे तो वे प्रस्ताव राजा के पास नहीं भेजे जाते परंतु यदि कोई प्रस्ताव तीन बेर प्रतिनिधि सभा में स्वीकृत हो चुका हो तो लार्ड सभा की अस्वीकृति रहने पर भी वह नियम बन जाता है।

१—लार्ड सभा के अधिकार।

(१) लार्ड सभा में जाते हुए या बैठे हुए लार्ड पकड़े या कैद नहीं किए जा सकते, (२) पार्लियामेंट के खुलने की सूचना राजा को प्रत्येक लार्ड के पास भेजनी पड़ती है, (३) लार्ड्ज़ जूरी के सभ्य नहीं हो सकते हैं।

२—लार्डों के अधिकार।

लार्ड सभा के अधिकारों को दिखाते हुए लिखा गया है

कि प्रजा की अपीलें लार्ड सभा के पास ही जाती हैं । लार्ड सभा ने न्यायालय के तौर पर संतोषप्रद काम किया है यह कहना अति कठिन है । अंग्रेज जाति के झगड़ों की सूची जिस प्रकार बढ़ती गई लार्ड सभा की इस मामले में सर्वथा अयोग्यता भी जनता को क्रमशः मालूम होती गई । महाशय अर्स्किन की सम्मति में आक्लात्रि के अनंतर लार्ड सभा में एक भी अच्छा प्राड्विवाक न रहा था जो कि जनता की अपीलों का उचित रीति पर निर्णय कर सकता। १८५६ में इंग्लैंड में यह खबर फैली कि लार्ड सभा में राज्यनियमों से अभिज्ञ किसी न किसी व्यक्ति को सभ्य अवश्य होना चाहिए तथा इस बात के लिये एक प्रस्ताव पास किए जाने का इरादा भी था परंतु लार्ड सभा की गलती से ऐसा न हो सका । परिणाम इसका यह हुआ कि कुछ ही समय के बाद 'मुख्य न्यायालय के न्याय संबंधी नियम' (Supreme Court of Judicature Act) से लार्ड सभा के हाथ से न्याय संबंधी यह अधिकार सर्वथा ले लिया जाता परंतु १८७५ के नियम से उसको कुछ कुछ अधिकार पुनः प्राप्त हो गए। अब यह राज्यनियम हो गया है कि जब तक लार्ड सभा में निम्नलिखित तीन व्यक्ति उपस्थित न हों तब तक उसमें अपीलें नहीं सुनी जा सकती हैं। वे तीन व्यक्ति ये हैं-(१) लार्ड चांसलर (Lord Chancellor)

१—लार्ड सभा का न्यायालय संबंधी अधिकार ।

(२) अपील के लार्डस (Lords of Appeal in Ordinary)

(३) कोई एक लार्ड जो कि न्यायालय विभाग में अधिकारी रह चुका हो।

लार्ड सभा के सभ्य न्याय संबंधी विषयों से चाहे परिचित हों या न हों, अपीलों का निर्णय उस सभा में बहुसम्मति से ही होता है। इस प्रकार लार्ड सभा के न्याय संबंधी अधिकार पर जो कुछ लिखना था लिखा जा चुका है। अब हम इसके नियम संबंधी अधिकारों का निरीक्षण करेंगे।

२ लार्ड सभा के नियम-निर्माण संबंधी अधिकार।

लार्ड सभा के नियम-निर्माण में प्रायः प्रतिनिधि सभा के सदृश ही अधिकार हैं। प्रतिनिधि सभा को आर्थिक विषयों के मामले में लार्ड सभा की अपेक्षा कुछ अधिक अधिकार प्राप्त हैं। किसी भी सभा में आर्थिक विषयों के अतिरिक्त कोई भी प्रस्ताव पेश हो सकता है तथा उससे पास होकर दूसरी से पास करवाया जा सकता है। वैयक्तिक प्रस्तावों में तो लार्ड सभा की ही प्रधानता है और इसमें कारण यह है कि उसके प्रधान को बहुत से राज्यकार्य नहीं होते हैं अतः वह इसी प्रकार के प्रस्ताव संबंधी कार्यों पर विशेष ध्यान दे सकता है। आर्थिक प्रस्तावों का तो प्रतिनिधि सभा में ही पहले पहल पेश होना आवश्यक है। सुधार संबंधी प्रस्ताव भी प्रायः प्रतिनिधि सभा में ही पहले पहल जाते हैं। इसका कारण यह है कि प्रतिनिधि सभा ही लार्ड सभा की अपेक्षा अधिक उदार विचार की है। परंतु यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि इंग्लैंड में संकुचित विचारवाली मंत्रिसभा की जब कभी प्रधानता होती है तब

यह बात नहीं रहती। सर विलियम ऐंसन का कथन है कि महाशय ग्लैडस्टन तथा डिजरैली के मंत्रित्वकाल में प्रायः बहुत से प्रस्ताव लार्ड सभा में ही पहले पहल पेश हुए थे। इस विषय पर इतना ही लिख कर अब लार्ड सभा के शासन संबंधी अधिकारों पर कुछ विशेष प्रकाश डाला जायगा।

लार्ड सभा के शासन संबंधी अधिकार।

यह कहना सर्वथा भ्रम में पड़ना होगा कि इंगलैंड में लार्ड सभा की शक्ति को प्रतिनिधि सभा ने चूस लिया है। वास्तविक बात तो यह है कि इंगलैंड की दोनों ही मुख्य सभाओं की शक्ति को अंग्रेजी मांत्रिसभा ने ले लिया है। आज कल दोनों ही सभाओं में वैयक्तिक प्रस्तावों की संख्या दिन प्रति दिन कम हो रही है। अंग्रेजी शासनपद्धति पर लिखनेवालों की सम्मति में मंत्रिसभा की बढ़ती हुई यह शक्ति इंगलैंड के लिये हानिकर है। महाशय लो ने बड़े गंभीर विचार के अनंतर कहा है कि "प्रतिनिधि सभा को नियामक सभा कहना निरर्थक है। यह तो आज कल मंत्रियों के नियामक प्रस्तावों की एक मात्र विवादभूमि हो गई है। आज कल राजनैतिक विवादों की सभा का काम एक मात्र प्रतिनिधि सभा कर रही है।" लार्ड सेसिल ने एक बार प्रतिनिधि सभा में स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—"हम लोग वैयक्तिक अधिकारों के अतिक्रमण को प्रायः सुना करते हैं, परंतु यहाँ पर यह सुना देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रतिनिधि सभा की संपूर्ण नियामक शक्ति मंत्रिसभा के ही हाथ में

दिन पर दिन चली जा रही है......इसका क्या कारण है ? इसकी कोई परवाह नहीं करता है। सभ्यों के अधिकार छिन रहे हैं परंतु इस सभाभवन के बाहर किसी भी व्यक्ति को इसकी कुछ भी चिंता नही है........."। महाशय लार्वेल ने बहुत सी गणनाओं के अनुसार यह स्पष्ट तौर पर दिखाया है कि किस प्रकार राजकीय प्रस्तावों के सुधारों में प्रतिनिधि-सभा दिन प्रति दिन कम हाथ दे रही है। आपका कथन है कि १८५१ से १८६० तक राजकीय प्रस्तावों में ४७ प्रस्तावों में सुधार किया गया था, और १८७४ से १८७८ तक केवल एक ही प्रस्ताव में तथा १८९४ से १९०३ तक केवल दो ही प्रस्तावों में सुधार किया गया था। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि लार्ड सभा ने ही केवल अपनी शक्ति को नहीं खोया है अपितु प्रतिनिधि सभा भी वैसी ही दशा में है। इन दोनों सभाओं की शक्ति यदि किसी ने चूस ली है तो वह केवल मंत्रिसभा है। सारांश यह कि लार्ड सभा ने यदि अपनी शक्तियाँ खोई हैं तो यह न समझना चाहिए कि उसने वे शक्तियाँ प्रतिनिधि सभा को दे दी हैं। प्रतिनिधि सभा बेचारी तो स्वयं भी शक्तिहीन हो गई है। इन दोनों सभाओं की शक्ति तो मंत्रिसभा ले गई है। प्रतिनिधि सभा तथा लार्ड सभा के बीच में एक अंतर अवश्यमेव है। वह यह है कि मंत्रिसभा पहले पहल प्रतिनिधि सभा को ही नशा पिलाया करती है।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि आर्थिक विषयों में

प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा लार्ड सभा की शक्ति न्यून है। आर्थिक प्रस्तावों का प्रतिनिधि सभा में ही पहले पहल पेश होना आवश्यक है और यह उचित ही प्रतीत होता है, क्योंकि जिस समय संपूर्ण राष्ट्र के चलाने के लिये प्रतिनिधि सभा को ही धन देना हो उस समय धन संबंधी प्रस्ताव भी उसीमें पेश होने चाहिएँ।

प्रतिनिधि सभा ने लार्ड सभा से यह अधिकार सर्वथा ही अपने हाथ में ले लेने के लिए १६६१ में पहले पहल प्रयत्न किया। १६६१ में लार्ड सभा ने वेस्टमिनिस्टर की सड़कों को सुधारने के लिये धन संबंधी एक प्रस्ताव पास करके प्रतिनिधि सभा में भेजा। प्रतिनिधि सभा ने उपरोक्त सिद्धांत के अनुसार उसे पास न किया तथा कहा कि 'धन संबंधी प्रस्ताव पहले पहल उन्हींके पास पेश होने चाहिएँ जब कि रुपए उन्हीं को देने हैं।' इस कार्य के अनंतर प्रतिनिधि सभा ने अपने यहाँ उसी प्रकार का एक प्रस्ताव पास कर के लार्ड सभा के पास भेजा। लार्ड सभा ने उस पर एक टिप्पणी चढ़ा कर अपने यहाँ से पास कर के प्रतिनिधि सभा के पास पुनः भेज दिया। परिणाम इसका यह हुआ कि वह प्रस्ताव जहाँ का तहाँ रह गया। अगले वर्ष पुनः इसी प्रकार का एक प्रस्ताव प्रतितिधि सभा में पास हो कर लार्ड सभा में पहुँचा। लार्ड सभा ने ढीलढाल की तथा कुछ एक बँदर-घुड़कियाँ दिखला कर उसे पास कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रतिनिधि सभा ने यह अधिकार उसके हाथ से

सदा के लिये छीन लिया। १८७८ में लार्ड सभा आर्थिक विषयों में सर्वथा निःशक्त हो गई तथा उसके अनंतर शासनपद्धति में यह नियम स्थिर रीति पर काम करने लगा कि "राजा को प्रत्येक प्रकार की आर्थिक सहायता देनेवाले प्रस्तावों का प्रतिनिधि सभा में पहले पहल पेश होना आवश्यक है और लार्ड सभा उनमें काँट छाँट कुछ भी नहीं कर सकती। जो कुछ उसके हाथ में है वह यही है कि चाहे वह उन प्रस्तावों को पास करे या न पास करे"।

यह भी पूर्व लिखा जा चुका है कि लार्ड सभा प्रतिनिधि सभा की अपेक्षा संकुचित विचार की है। उदार दलवालों की यह सभा बहुत ही अधिक काँट छाँट किया करती है।

प्रतिनिधि सभा के बहुत से प्रस्ताव उचित रीति पर ध्यान रख कर नहीं बनाए जाते हैं। लार्ड सभा उन प्रस्तावों का संशोधन किया करती है। संशोधन करने के लिये साहस, स्वतंत्रता, निष्पक्षपात इन तीन गुणों की अत्यंत अधिक आवश्यकता होती है। लार्ड सभा में साहस, तथा स्वतंत्रता ये दोनों गुण विद्यमान हैं पर शोक की बात है कि उसमें निष्पक्षपातता का गुण नहीं है।

लार्ड सभा जातीय दलों के विचारों से प्रायः प्रभावित हो जाया करती है जिससे प्रस्तावों का संशोधन उचित रीति पर नहीं होने पाता। राजनीतिज्ञों की सम्मति है कि समय पा कर लार्ड सभा में यह गुण भी आ ही जायगा।

इंगलैंड में लार्ड सभा से जाति को जो कुछ लाभ पहुँचते हैं वे भुलाए नहीं जा सकते। इंगलैंड एक मात्र लार्ड सभा के कारण भयानक आक्रांतियों का पात्र न हो सका। लार्ड सभा का उच्छेद कर राज्य की संपूर्ण नियामक शक्ति एक सभा के हाथ में दे देना इंगलैंड के लिये सर्वथा हानिकर है। यदि किसी देश को आक्रांतियों की चाह हो तो वह यह काम करे। संपूर्ण सभ्य देशों की शासनपद्धतियाँ यही बता रही हैं कि देश की नियामक शक्ति को एक सभा के हाथ में कभी भी न देना चाहिए। इंगलैंड ने तो क्रामवेल के समय में ऐसा करके फल भोग ही लिया है। रंप ने १६४९ की १७ मार्च को राजा के पद को जाति के लिये अनावश्यक तथा भयानक ठहराया और उसी के दो दिन बाद लार्ड सभा पर भी अपनी छुरी चला दी तथा उसका भी एक नियम द्वारा सदा के लिये मूलोच्छेदन कर दिया। उस नियम के शब्द निम्नलिखित हैं—

४. लार्ड सभा का समुच्छेद

'The Commons of England—finding by long experience that the House of Lords is useless and dangerous to the people of England to be continued, have thought fit to ordain and enact—that from henceforth the House of Lords in Parliament shall be and hereby is wholly abolished and taken away; and that the Lords shall not from henceforth meet or sit in the said House, called the Lord's House, or in any other

house or place whatsoever, as a House of Lords; nor shall sit, vote, advise, adjudge, or determine of any matter or thing whatsoever, as a House of Lords in Parliament'

इस प्रकार लार्ड सभा को सर्वथा नष्ट कर अंग्रेज जाति के कुछ सभ्यों ने इंगलैंड पर एक सभा द्वारा ही शासन करने का यत्न किया परंतु वे लोग सफल न हो सके तथा अंग्रेज जाति को कुछ ही समय के बाद 'राजा' तथा लार्ड सभा इन दोनों का ही पुनः उद्धार करना पड़ा। यह हमारा तात्पर्य नहीं है कि एक नियामक सभा द्वारा किसी जाति का शासन सफलता से नहीं चल सका है। अत्यंत उन्नत आचारवाली जातियों में यह संभव है। परंतु आजकल कोई भी जाति इतने उच्च आचार की नहीं है। अतः एक नियामक सभा द्वारा शासन का सफलता से होना भी कठिन ही हो गया है। महाशय वाल्टर बैज्हाट ने बहुत ही ठीक कहा है—

" परिपूर्ण तथा अति योग्य प्रतिनिधि सभा यदि किसी देश में हो तो उस देश के लिये किसी दूसरी राष्ट्रसभा या लार्ड सभा का होना सर्वथा ही निरर्थक है। परिपूर्ण तथा अति योग्य प्रतिनिधि सभा से हमारा तात्पर्य यह है कि वह पूर्ण रीति पर जाति की प्रतिनिधि हो, उसके सभ्य उच्च आचार के हों, जिनमें क्रोध, लोभ, मोह, इर्षा, द्वेष आदि दूषणों की सत्ता न हो तथा जिनमें विचारशक्ति इस सीमा तक हो कि उनके कार्यों में तथा विचारों में त्रुटि का स्थान तक भी न रहता हो, तथा जिनके पास किए हुए प्रस्तावों के पुनः

निरीक्षण की कुछ भी आवश्यकता न हो। यदि इस प्रकार के सभ्य किसी देश की प्रतिनिधि सभा में विद्यमान हों तो उस देश के लिये किसी दूसरी राष्ट्रसभा या लार्ड सभा का रखना सर्वथा ही अनावश्यक है। अनावश्यक ही नहीं अपितु अत्यंत हानिकर है। परंतु यदि ऐसी दशा न हो, तब तो दूसरी सभा का होना बहुत ही आवश्यक है, और यदि दूसरी सभा कोई देश न रखे तो उसे उसका बुरा फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा, इस में संदेह करना वृथा है।"

आठवाँ परिच्छेद ।

आस्ट्रिया हंगरी ।

आस्ट्रिया हंगरी का सम्मिलन विचित्र है और उसकी शासनपद्धति भी अपूर्व ही कही जा सकती है। आस्ट्रिया तथा हंगरी में बहुत सी भिन्न भिन्न भाषाभाषी जातियों का निवास है। जातियाँ आपस में सदा लड़ती रहती हैं तथा एक जाति दूसरी को कुचलने का यत्न करती रहती है। हंगरी में मगयार जाति की प्रधानता है पर आस्ट्रिया में ऐसी दशा नहीं है। आस्ट्रिया में जर्मनों की शक्ति को अन्य जातियां कम नहीं कर सकती हैं। इतना ही होता तो तब भी कोई बात थी। आस्ट्रिया हंगरी का संघटन भी सर्वथा अपूर्ण है। राजनैतिक मामलों को छोड़ कर आस्ट्रिया के साथ हंगरी का वैसा ही संबंध है जैसा कि एक विदेशीय राष्ट्र का होता है। यहां पर यह भी न भूलना चाहिए कि आस्ट्रिया तथा हंगरी के संघटन की शर्त्तें भी निश्चित नहीं हैं। कई एक हंगेरियन राजनीतिज्ञों की सम्मति है कि आस्ट्रिया से संबंध के विषय में हंगरी सर्वथा स्वतंत्र है। इसी प्रकार के शासनपद्धति संबंधी और बहुत से झमेले हैं जिनका कि समझना सर्वथा कठिन है जब तक कि आस्ट्रिया हंगरी की शासनपद्धति की उत्पत्ति के इतिहास पर एक दृष्टि न डाली जाय। अब इसी विषय पर कुछ शब्द लिखे जायँगे।

फ्रांस की आक्रांति का आधार समानता, स्वतंत्रता तथा

भ्रातृभाव पर था यह किसीसे भी छिपा नहीं है। फ्रांस की आक्रांति ने उपरिलिखित भावों से संपूर्ण युरोप को गुँजा दिया। यह होते हुए भी युरोप में जातीयता के भावों ने पूर्वापेक्षा और भी अधिक बल पकड़ा। सारा का सारा युरोप भिन्न भिन्न जातियों का आगार हो गया और ये जातियाँ एक दूसरे को दबाने की चेष्टाओं में प्रवृत्त हो गईं।

आस्ट्रिया हंगरी की शासनपद्धति का उद्भव।

इस अवस्था से आस्ट्रिया को जो कष्ट पहुँचा उसका वर्णन करना कठिन है। आस्ट्रिया में बहुत सी जातियाँ रहती थीं और अब भी रहती हैं। जिस प्रकार भिन्न भिन्न जातियों ने पारस्परिक विद्वेष से संपूर्ण युरोप में कलह की आग जला दी उसी प्रकार आस्ट्रिया को भिन्न भिन्न जातियों ने आपस में कलह कर दुर्बल करना प्रारंभ कर दिया।

१८४८ में आस्ट्रिया में जनता ने सम्राट् के प्रति विद्रोह किया और उसको राज्य पर से हटा दिया। सम्राट् के इटैलियन तथा हंगेरियन प्रांत सदा के लिये स्वतंत्र हो गए। कुछ समय के अनंतर रूस की सहायता से सम्राट् ने जनता के विद्रोह को शांत किया और अपने पद को स्थिर करने का यत्न किया। १८५९ के इटैलियन युद्ध में नेपोलियन तृतीय से आस्ट्रिया पराजित हुआ और कुछ वर्षों के बाद ही बिस्मार्क से भी बहुत ही बुरी तरह से उसे अपमानित होना पड़ा।

इन भयानक चोटों तथा अपमानों से शिक्षा ले कर

सम्राट् ने अपनी प्रजा को संतुष्ट करना तथा शांत करना अपनी शक्ति तथा स्थिति के लिये उचित समझा। इस महान् कार्य के लिये सम्राट् ने बैरन बूस्ट (Baron Beust) नामी एक विदेशी से सहायता लेनी प्रारंभ की। बैरन् बूस्ट ने आस्ट्रिया के लिये जो कार्य किया वह आस्ट्रियन कभी भी नहीं भूल सकते हैं। इटली का प्रांत आस्ट्रिया के हाथ से सदा के लिये ही निकल चुका था। हंगरी भी सदा के लिये पृथक् हो जाता यदि यह महानुभाव आस्ट्रिया पर कृपा न करता। इसने आस्ट्रिया के साथ हंगरी को विचित्र विधि से जोड़ा। इसने आस्ट्रिया के लिये जिस शासनपद्धति का निर्म्माण किया वही आज तक आस्ट्रिया में प्रचलित है।

आस्ट्रिया सत्रह प्रांतों में विभक्त है। प्रत्येक प्रांत में भिन्न भिन्न जातियों का निवास है। जातियों की भिन्नता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि राष्ट्रसंघटन की जातीय सभा में भिन्न भिन्न आठ या नौ भाषाओं में सभ्यों को राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ती है। आस्ट्रिया में सन् १८९० की ३१ दिसंबर को निम्नलिखित जातियाँ तथा मनुष्य रहते थे—

जर्मन	८४६१५८०
जैच	५४७२८७१
पोल	३७१९२३२
रूथानियन्	३१०५२२१
स्लावीनियन्	११७६६७२
इटैलियन्	६७५३०५

क्रोट् और सर्व	६४४९२६
रूमानियन	२०९११०
अन्य जातियां	४३०४९६
कुल	२३८९५४१३

आस्ट्रियन शासन-पद्धति में भिन्न भिन्न जातियों का बड़ा भारी हाथ है। परंतु इस विषय को स्पष्ट करने के पहले यहाँ शासनपद्धति के उद्भव के विषय में कुछ शब्द लिख देने आवश्यक प्रतीत होते हैं। प्रशिया से पराजित होने के अनंतर १८६७ की २१ दिसंबर को शासनपद्धति की पाँच नियमधाराएँ बनाई गईं जिनका परिवर्तन जातीय सभाओं की $\frac{2}{3}$ सम्मति के बिना नहीं हो सकता था। आस्ट्रिया में सम्राट् का पद वंशागत है। स्त्रियों को सम्राट् के पद पर अधिरोहण करने का प्रायः अधिकार नहीं है।

सम्राट् के अधिकार।

आस्ट्रिया में भी सम्राट् के वे ही अधिकार हैं जो कि अन्य देशों में सम्राट् के अधिकार होते हैं। आस्ट्रियन सम्राट् विदेशीय राष्ट्रों से संधि कर सकता है, राज्याधिकारियों को नियत करता है; लार्डस् बनाता है, अपराधियों को क्षमा प्रदान कर सकता है और नियामक सभाओं के अधिवेशनों को बुलाता है तथा विसर्जन भी वही करता है। शासनपद्धति की नियमधाराओं के अनुसार सम्राट् के प्रत्येक प्रकार के कार्य पर मंत्रियों को हस्ताक्षर करने पड़ते हैं जिससे सम्राट् का उत्तरदातृत्व मंत्रियों पर जा पड़ता है। जो

कुछ भी हो। यद्यपि इससे सम्राट् की शक्ति बहुत कुछ कम हो सकती थी परंतु वास्तव में आस्ट्रिया में सम्राट् की शक्ति बहुत ही अधिक है। समय समय पर वह अपनी शक्ति को बड़ी स्वतंत्रता से भी काम में लाता है। इसका एक कारण यह भी है कि आस्ट्रिया में जातियों में एकता नहीं है। जाति के इस पारस्परिक कलह से सम्राट् पूर्ण तौर पर लाभ उठाता है तथा उसकी शक्ति भी उतनी ही अधिक है जितनी कि जर्मन सम्राट् विलियम द्वितीय की है।

आस्ट्रिया में भी मंत्रिसभा के वैसे ही कार्य तथा अधिकार हैं जैसे कि अन्य देशों में हैं। मंत्रियों को जातीय सभाओं में बोलने का अधिकार प्राप्त है। आस्ट्रिया में अभी तक मंत्रियों पर जातीय सभाओं की ओर से अभियोग नहीं चलाया गया है। मंत्रिसभा के सभ्यों का पद बहुत कुछ स्थिर है। इसका कारण यह है कि आस्ट्रियन राजनीतिज्ञ प्रबंध-विभाग में दलों के अनुसार राज्याधिकारियों को नियत करना पसंद नहीं करते हैं।

मंत्रिसभा।

आचार का शासनपद्धति के संचालन में जो भाग है उसका विवरण पहले किया ही जा चुका है। राज्याधिकारियों का आचार आस्ट्रिया में बहुत ही अधिक गिरा हुआ है। एक बार एक रेलवे के प्रबंधकर्त्ता ने ठेके देने में अपना हाथ भी गरम किया। इससे उस पर मुकदमा चलाया गया परंतु राज्यमंत्री ने उसको यह कह कर छोड़ दिया "कि ऐसा करना तो आस्ट्रिया में पुराने समय से चला आया है"। इस प्रकार आचार के उच्च न होने से

आचार।

आस्ट्रिया को जो हानि पहुँच रही है उसका पाठक स्वयं ही अनुमान कर सकते हैं। यदि आस्ट्रिया में राजा दलों के अनुसार महामंत्री तथा राज्याधिकारियों को चुनते तो आचार की अवनति के कारण राज्य-प्रबंध में जो भयानक हानियाँ उपस्थित होतीं उनका अनुमान लगाया जाना कठिन है।

आस्ट्रियन 'मंत्रिसभा' की शक्ति अपरिमित है। यद्यपि राज्यनियमों को बनाना शासनपद्धति की नियमधाराओं के अनुसार उसके हाथों में नहीं है परंतु कुछ कारणों से उन नियमधाराओं का मंत्रिसभा के सभ्यों पर विशेष प्रभाव भी नहीं है। मंत्रिसभा के सभ्य बड़ी स्वतंत्रता से शासन का कार्य करते हैं। उनकी शक्ति का इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि व्यापारिक तथा धार्मिक सभाओं को छोड़ कर अन्य किसी प्रकार की सभा को आमंत्रित करना मंत्रियों की आज्ञा के बिना नहीं हो सकता। सभा की संपूर्ण कार्रवाई प्रजा को मंत्रियों के पास भेजनी पड़ती है। राजनैतिक षड्यंत्रों को रोकने के लिये राज्य की ओर से प्रत्येक प्रकार की कठोरता आस्ट्रिया में विद्यमान है। प्रत्येक प्रकार की सभा में पुलिस जा सकती है और यदि पुलिस की इच्छा हो तो वह उस सभा को विसर्जित भी कर सकती है। सारांश यह है कि आस्ट्रिया में भी जनता को अभी तक वह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है जो कि उसको चिरकाल से अभीष्ट है। कुछ ही समय पहले रूस में भी प्रेस तथा वाक्शक्ति राज्य की ओर से दबी हुई थी परंतु इस विषय में अभी जो इस नवीन आक्रांति

हुई है उस से रूस भी जनता को कितनी स्वतन्त्रता मिलेगी इसका वर्णन करना कठिन है।

अभी लिखा जा चुका है कि आस्ट्रिया में मंत्रिसभा तथा राज्याधिकारियों की शक्ति बहुत ही अधिक बढ़ी हुई है। इस शक्ति के अत्याचारों को रोकने के लिये आस्ट्रिया में एक शासकसामिति है जो कि स्वतंत्रता-पूर्वक 'न्याय' का कार्य करती है। राज्याधिकारियों पर जनता की ओर से जो मुकदमे चलाए जाते हैं उनका निर्णय यही समिति करती है। इस सामिति को भी अन्य यूरोपीय 'शासक समितियों' के तुल्य ही समझना चाहिए। यह सामिति जनता के आक्षेपों तथा समालोचनाओं से राज्याधिकारियों को बचाती है और जनता को राज्याधिकारियों की क्रूरता तथा आत्याचार से स्वरक्षित करती है। आस्ट्रियन शासक-समिति राज्याधिकारियों के हस्तक्षेप से स्वयं वहुत दूर है। इसके सभ्यों का चुनाव जातीय सभाओं तथा सम्राट् के द्वारा होता है। सम्राट् शासक-समिति के सभापति को अपनी इच्छा के अनुसार चुनता है परंतु शासक-समिति के बारह सभ्यों के चुनाव में उसका सीधा हाथ नहीं है। जातीय सभाओं की ओर से तीन तीन सभ्यों के नाम सम्राट् के पास भेज दिए जाते हैं जिनमें से एक न एक सभ्य सम्राट् को चुनना पड़ता है। इसी एक सभ्य के सदृश ही अन्य बारह सभ्यों का चुनाव भी होता है।

शासक-समिति भी अन्य न्याय संबंधिनी समितियों के सदृश राज्यनियमों में अदल बदल करने में असमर्थ है। इसका

कारण पहले कई बार लिखा जा चुका है। यहाँ पर भी विषय की स्पष्टता के लिये पुनः लिख दिया जाता है। युरोप में जातियों की पारस्परिक कलह भयानक है। अतः संपूर्ण युरोप में न्याय समितियाँ राज्यनियमों के मामले में बहुत ही दुर्बल हैं। शासक-समितियों का उद्देश्य भी शासकों को जनता से बचाना ही होता है। आस्ट्रिया ने भी उसी विधि का अनुकरण करना ठहराया जिसका अवलंबन कि अन्य युरोपीय राष्ट्रों ने देर से किया था। यही कारण है कि आस्ट्रियन न्याय-समितियों का यह अधिकार नहीं है कि वे निर्णय करें कि कौन सा राज्यनियम शासनपद्धति की नियमधाराओं के अनुकूल है और कौनसा नहीं।

शासक समिति ही आस्ट्रिया में राष्ट्रीय अधिकारों तथा शक्तियों के अभियोगों का निर्णय करती है।

आस्ट्रिया की जातीय सभा दो सभाओं से मिल कर बनी है। एक तो लार्ड सभा और दूसरी प्रतिनिधि सभा। लार्ड सभा के सभ्य राजपुत्र, राजवंशज, कुलीन, व्यक्ति, पादरी, महापादरी आदि होते हैं। सम्राट् बहुत से व्यक्तियों को लार्ड सभा का आजीवन के लिये सभ्य बना सकता है और समय समय पर बनाता भी रहा है। नवीन नवीन व्यक्तियों के आगमन से लार्ड सभा का पुराना रूप बदल गया है तथा वह कुलीन व्यक्तियों की सभा के स्थान पर योग्य योग्य पुरुषों की सभा हो गई है। लार्ड सभा तथा प्रतिनिधि सभा के अधिकार एक ही सदृश हैं। लार्ड सभा के सभ्यों के बनाने के संबंध में सम्राट् का अधिकार

लार्ड सभा।

आज कल बहुत कुछ परिमित कर दिया गया है।

प्रतिनिधि सभा के सभ्य ६ वर्षों के लिये चुने जाते हैं। प्रतिनिधि सभा को सम्राट् जब चाहे तब विसर्जित कर सकता है। प्रतिनिधि सभा के सभ्यों का चुनाव प्रांतों के निवासियों द्वारा सीधे तौर पर होता है। १८९६ में जहाँ लोक सभा के ३५२ सभ्य थे वहाँ १९०७ में ४२५ तथा १९०८ में ५२६ हो गए थे। आस्ट्रिया में प्रतिनिधि सभा के सभ्यों को चुननेवालों की पाँच श्रेणियाँ हैं।

प्रतिनिधि सभा।

(१) भूमिपति, (२) नगरनिवासी, (३) व्यापारीय समितियाँ, (४) ग्रामवासी, (५) साधारण जनसमूह।

इन पाँच श्रेणियों के अनुसार ही चुनाव के प्रांतों का विभाग है। बहुत से ऐसे ऐसे छोटे नगर भी हैं जो कि स्वतः एक प्रांत हैं। साधारण तौर पर प्रत्येक प्रांत को एक एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। भिन्न भिन्न श्रेणियों के प्रतिनिधि १९०७ में इस प्रकार थे—

(१) भूमिपति	८५	प्रतिनिधि
(२) नगर	११८	,,
(३) व्यापारिक समितियाँ	२१	,,
(४) ग्राम	१२९	,,
(५) साधारण जन समूह	७२	,,
	४२५	

प्रतिनिधि सभा का प्रति वर्ष अधिवेशन होता है। इसकी शक्ति भी अन्य देशों की प्रतिनिधि सभा के सदृश ही समझनी चाहिए। लार्ड सभा तथा प्रतिनिधि सभा किसी में पहले प्रस्ताव पास किया जा सकता है तथा पास कर के दूसरी सभा में पास करने के लिये भेजा जा सकता है। प्रत्येक प्रकार के नियम, व्यापारिक संधियाँ तथा कर आदि विषयों का दोनों सभाओं में पास होना आवश्यक है। यदि दोनों सभाओं की सम्मति किसी विषय पर न मिलती हो तो 'न्यूनतम' राशि या संख्या का जिस सभा ने प्रस्ताव किया हो उसीका प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। आस्ट्रिया नाम-मात्र को एकात्मक राष्ट्र है वास्तव में उसको राष्ट्र-संघटन ही समझना चाहिए। इसी विचार से अब राष्ट्रों की शक्ति पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया जायगा।

राष्ट्रों की शक्ति।

राष्ट्रों की शक्ति दो प्रकार की है। एक तो स्वतंत्र तथा दूसरी परतंत्र। जिन कार्यों में राष्ट्र स्वतंत्र हैं वे निम्नलिखित कहे जा सकते हैं—

(१) स्थानीय राज्य संबंधी नियम
(२) कृषि संबधी नियम
(३) शिल्प संबंधी तथा अन्य प्रकार के विद्यालयों का प्रबंध
(४) प्रांतीय जायदाद
(५) धर्मार्थ संस्थाएँ
(६) राष्ट्र-संघटन से भिन्न अन्य करों का एकत्रण
(७) अपनी अपनी राष्ट्रीय सभाओं के निर्माण तथा सभ्यों के चुनाव में स्वतंत्रता।

१२

परंतु निम्नलिखित कार्यों में राष्ट्र मुख्य राज्य के अधीन हैं—

(१) आरंभिक विद्यालयों का प्रबंध

(२) चर्चों तथा मठों का प्रबंध

नियम-निर्माण में यद्यपि प्रांतिक राष्ट्रों की शक्ति न्यून है तथापि उनकी राजनैतिक शक्ति कभी भी भुलाई नहीं जा सकती है। इस कारण अब राष्ट्रों की शासनपद्धति पर एक दृष्टि डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

राष्ट्रों का शासन एक सभा के द्वारा किया जाता है। सभा के सभ्यों का चुनाव छठे वर्ष होता है। राष्ट्रों की भिन्न भिन्न सभाओं के सभ्यों की संख्या भिन्न भिन्न है। १९११ में बोहीमिया की सभा में २४२ सभ्य थे और बोरलीबर्ग में एक मात्र २६ ही थे।

राष्ट्रीय सभाओं को हम जातीय सभा का सूक्ष्म स्वरूप कह सकते हैं, क्योंकि उनमें लार्ड सभा के सदृश बंशज लार्डों तथा पादरियों को सभ्यों के तौर पर स्थान मिला हुआ है और साधारण प्रजा के प्रतिनिधि भी उसमें आते हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय सभाओं को न अतिशय उदार, न अतिशय संकुचित कह सकते हैं।

राष्ट्रों का एक दूसरे से पत्र-व्यवहार करना निषिद्ध है। ऐसा करना अस्ट्रिया के लिये स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। क्योंकि अस्ट्रियन राष्ट्र बड़े ही उद्दंड हैं तथा आपस में हर समय लड़ते रहते हैं। सम्राट् ही राष्ट्रीय सभाओं का प्रधान नियत करता है और जब चाहता है तब राष्ट्रीय सभाओं के अधि-

वेशन विसर्जित कर देता है और कभी कभी उनको नए चुनाव के लिये वाधित कर देता है। सारांश यह कि आस्ट्रियन प्रांतों की स्वतंत्रता सम्राट् द्वारा प्रतिबद्ध है।

नियम-निर्माण में जहां आस्ट्रिया राष्ट्रसंघटन कहा जा सकता है वहां शासन-कार्य में वह एकात्मक राष्ट्र की रीति पर काम करता है। राष्ट्रीय शासक राष्ट्रीय सभाओं के स्थान पर मुख्य राज्य के ही उत्तरदाता होते हैं। इसका कारण यह है कि सम्राट् ही राष्ट्रीय शासकों को नियत करता है। राष्ट्रों का प्रबंध एक प्रबंध-कारिणी सभा द्वारा होता है। इसका प्रधान भी राष्ट्रसभा का प्रधान ही होता है।

आस्ट्रिया में धर्म तथा जाति का प्रश्न अत्यंत विकट है। प्रशिया से पराजय प्राप्त करने के अनंतर जिस समय आस्ट्रिया में उदार दल की प्रधानता हुई, उस समय उन्होंने कैथोलिकों के विरुद्ध बहुत से नियम पास किए। आस्ट्रिया में ४/५ कैथोलिक हैं तथा १/५ उससे भिन्न धर्म्मावलंबी। जातियों के विषय में यह पहले ही लिखा जा चुका है कि किस प्रकार आस्ट्रिया भिन्न भिन्न जातियों की नाट्यशाला है। आस्ट्रिया में सब से अधिक शिक्षित, धनाढ्य तथा योग्य पुरुष जर्मन हैं। इन लोगों की दृष्टि से आस्ट्रिया को जर्मनी का एक भाग कह देने में भी अत्युक्ति न होगी। जर्मनों की शक्ति, आस्ट्रिया की शासनपद्धति में अनंत हो जाती यदि वे आपस में विभक्त न होते। जर्मन से अतिरिक्त अन्य जातियाँ आस्ट्रियन राजनीति में अपने प्रभुत्व के लिये बहुत ही अधिक यत्न करती रहती हैं। परिणाम इसका यह है कि

आस्ट्रिया भिन्न भिन्न जातियों की कलहभूमि हो गया है। सम्राट् फ्रैंसिस जोजफ़ ने देश में शांति-स्थापन का बहुत ही अधिक यत्न किया परंतु वह पूर्णतया सफल न हो सका।

आस्ट्रिया से हंगरी किस प्रकार पृथक् हो गया था और किस प्रकार वह पुनः आस्ट्रिया से मिलाया गया था यह पहले ही लिखा जा चुका है। सम्राट् को आस्ट्रिया तथा हंगरी दोनों ही की राजधानी में दो बार राज्याभिषेक तथा शपथ लेनी पड़ती है। आस्ट्रिया के सम्राट् "हंगरी का ईश्वर प्रेषित राजा" की उपाधि से भी पुकारा जाता है। सम्राट् ही आस्ट्रिया हंगरी की स्थल तथा जल सेना का निरीक्षण करता है। कुछ विभागों के पदाधिकारियों को दोनों देशों में सम्राट् ही नियत करता है। दोनों ही राष्ट्र विदेशी राष्ट्रों के साथ संधि व्यापार तथा अन्य अंतर्जातीय विषयों पर पृथक् पृथक् बात नहीं कर सकते हैं। सारांश यह कि दोनों ही राष्ट्रों का कार्य बहुत कुछ मिल कर किया जाता है। आस्ट्रिया तथा हंगरी की अपनी अपनी सेनाएँ हैं परंतु जातीय-सभा की आज्ञा के बिना युद्ध पर ये भेजी नहीं जा सकती हैं। दोनों राष्ट्रों का व्यय समय समय पर दोनों ही राष्ट्रों की सभाएँ नियत कर देती हैं परंतु यदि ऐसा न हो सके तो सम्राट् स्वयं व्यय नियत कर देता है तथा कौन राष्ट्र कितना देवे यह भी स्वयं ही निर्धारित कर देता है। हंगरी को १९०७ में कुल व्यय का ३३ $\frac{3}{8}$ देना पड़ता था और आस्ट्रिया

आस्ट्रिया-हंगरी का संघटन तथा शासन-पद्धति।

को ६६$\frac{४६}{४९}$ देना पड़ता था। इसी प्रकार जातीय ऋण में भी हंगरी केवल २४ फी सदी ही देता है।

आस्ट्रिया हंगरी की सम्मिलित शासनपद्धति अति विचित्र है। दोनों ही देशों के प्रतिनिधियों की एक एक राष्ट्र-संघटन की सभा होती है। प्रत्येक देश साठ साठ सभ्य भेजता है। उन साठ सभ्यों में से ४० सभ्य राष्ट्रीय प्रतिनिधि सभा के द्वारा चुन कर आते हैं और २० सभ्य राष्ट्रीय लार्ड सभा की ओर से। इनका चुनाव प्रति वर्ष होता है। उनका अधिवेशन एक बार वाइना में होता है तो दूसरी बार बुडापेस्ट में। जिस बार सभा का अधिवेशन आस्ट्रिया में होता है उस समय उसकी कार्रवाई जर्मन भाषा में होती है परन्तु जब उसका अधिवेशन बुडापेस्ट में होता है उस समय उसकी कार्रवाई मग्यार भाषा में ही लिखी जाती है। कोरम ८० सभ्यों का होता है। राष्ट्रसंघटन की सभाओं में सम्मति देने का अधिकार भी दोनों राष्ट्रों के सभ्यों को समान ही है। सारांश यह कि राष्ट्र-संघटन की सभाओं में आस्ट्रिया तथा हंगरी को शक्ति में समान समझ कर ही काम किया जाता है। यह घटना इस बात को भी स्पष्ट करती है कि किस प्रकार दोनों राष्ट्र अपने आपको एक दूसरे से पृथक् समझते हैं।

मुख्य मुख्य देशों की शासनपद्धति पर प्रकाश डाल कर अब अगले परिच्छेद में अन्य स्वतंत्र राज्यों की शासन-प्रणाली का संक्षेप में वर्णन किया जायगा तथा अंतिम परिच्छेद में उन उन अधीनस्थ देशों की शासनप्रणाली का

वर्णन किया जायगा जो भिन्न भिन्न स्वतंत्र राज्यों के शासनाधिकार में हैं। इस परिच्छेद के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जायगा कि किस अधीनस्थ राज्य में कौन स्वतंत्र राज्य किस नीति का अनुसरण करता है।



नवाँ परिच्छेद ।

अन्यान्य स्वाधीन राज्य ।

यहाँ न तो कोई राजसभा है और न कोई व्यवस्थापक सभा, यह शुद्ध राजसत्तात्मक राज्य है। यहाँ का प्रधान "अमीर" कहलाता है जो पूर्ण स्वतंत्र है और अपने राज्य में जो चाहता है सो कर सकता है। सब राज-कार्य्य उसी के हाथ में है और उसकी इच्छा ही कानून है। सारा देश चार प्रांतों में विभक्त है। प्रत्येक प्रांत में एक हाकिम रहता है जो नायब-उल-हुक्म कहलाता है। इसकी अधीनता में रईस और बड़े आदमी प्राचीन ग्राम्य-प्रथा के अनुसार मुकद्दमे सुनते और फैसला करते हैं। सारे देश में लूट मार और चोरी खूब होती है और डाँके पड़ते हैं। इस देश पर अभी तक पश्चिमी सभ्यता का कोई विशेष रंग नहीं चढ़ा है।

(१) अफ़गानिस्तान।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। १४ प्रांतों के ३०० प्रतिनिधिगण मिल कर छः वर्ष के लिये एक सभापति चुनते हैं। वही राज्य के सब कार्य्य करता है। कानून बनाने के लिये एक राष्ट्रीय-परिषद् (National Congress) है, उसमें ३० सदस्यों का सिनेट और १२० सदस्यों का एक हाउस आफ डेप्यूटीज़ (House of Deputies) होता है। सिनेट के मेंबरों का चुनाव राजधानी के मुख्य मुख्य

(२) अरगेंटाइन रिपब्लिक।

हाकिमों और प्रांतों के व्यपस्थापकों द्वारा होता है और डिप्टियों का चुनाव प्रजा के द्वारा। सभापति के साथ ही एक उप-सभापति भी चुना जाता है जो सिनेट का सभापति होता है। सभापति ही प्रधान सेनापति भी होता है और वही शासन, न्याय तथा सेना आदि विभागों के कर्म्मचारियों को नियुक्त करता है। सभापति और उप-सभापति के लिये यह आवश्यक है कि उनका जन्म अरगेंटाइन में ही हुआ हो और वे रोमन कैथोलिक संप्रदाय के हों। एक बार का चुना हुआ सभापति या उप-सभापति उस पद पर पुनः नहीं चुना जा सकता।

(३) इटली।

यहाँ का प्रधान अधिकारी राजा होता है। उसे ११ मंत्रियों की सहायता से राज्य का शासन और प्रबंध करना पड़ता है। परंतु कानून बनाने में राजा और पार्लामेंट दोनों का हाथ होता है। पार्लामेंट में सिनेट भी है और डिप्टियों की सभा भी। सिनेट में २१ वर्ष से अधिक अवस्था के राजघराने के लोग तथा राजा द्वारा आजन्म के लिये निर्वाचित ४० वर्ष से अधिक अवस्था के ऐसे लोग होते हैं जिन्होंने साहित्य या विज्ञान आदि में अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की हो अथवा जो कुछ निश्चित कर देते हों। २१ वर्ष से अधिक अवस्था का प्रत्येक पढ़ा लिखा या कुछ निश्चित कर देनेवाला नागरिक अथवा कृषक छोटे हाउस के लिये डिप्टी चुन सकता है। निर्वाचन के काम के लिये सारा राज्य ५०८ प्रांतों में विभक्त है और प्रत्येक प्रांत से

एक प्रतिनिधि (डिप्टी) निर्वाचित होता है। ३० वर्ष से कम अवस्था का कोई मनुष्य, राज्य का कोई वेतनभोगी कर्म्मचारी अथवा पादरी बननेवाला मनुष्य डिप्टी नहीं चुना जा सकता। हाँ, सेना-विभाग के कुछ उच्चाधिकारी, मंत्री तथा कुछ और बड़े अधिकारी अवश्य डिप्टी चुने जा सकते हैं; पर इनकी संख्या ४० से अधिक न होनी चाहिए। पार्लमेंट पाँच वर्ष तक रहती है और उसका अधिवेशन प्रति वर्ष होना आवश्यक है। राजा जब चाहे तब डिप्टियोंवाले छोटे हाउस को विसर्जित कर सकता है; परंतु ऐसा करने पर उसे नए चुनाव की आज्ञा दे कर चार महीने के अंदर इस हाउस का फिर से संगठन करना पड़ेगा। दोनों सभाओं को नए बिल पेश करने का अधिकार है और मंत्री दोनों के अधिवेशनों में उपस्थित हो सकते हैं; पर जब तक वे उसके सदस्य न हों तब तक किसी विषय में सम्मति नहीं दे सकते। दोनों सभाओं के सदस्य कुछ निश्चित रेलों और स्टीमरों पर बिना किराया दिए यात्रा कर सकते हैं।

यहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है। चार वर्ष के लिये एक सभापति चुना जाता है जो शासन-कार्य करता है।

(४) इक्वेडर। कानून बनाने के लिये एक कांग्रेस है जिसमें सिनेटरों तथा डिप्टियों के दो हाउस सम्मिलित हैं। सभापति के अतिरिक्त एक उपसभापति भी होता है जो सभापति के चुने जाने के दो वर्ष बाद चुना जाता है और आवश्यकता पड़ने पर सभापति का काम करता है।

(५) ईरान (फारस)

सन् १९०६ तक यहाँ का शासन मुसलमानी धर्म के सिद्धांतों के अनुसार पूर्ण रूप से राजा के हाथ में ही था, जो शाह कहलाता था। प्रजा उसे पैगंबर का प्रतिनिधि समझती थी। लेकिन सन् १९०६ में प्रजा की प्रार्थना पर शाह की स्वीकृति से एक राष्ट्रीय सभा (National Council) स्थापित हुई जिसमें राज्यकुल के लोगों, अमीरों, सरदारों, जागीरदारों, व्यापारियों और मुल्लाओं आदि के उन्हींमें से चुने हुए, १५६ सदस्य होते थे। सदस्य दो वर्ष के लिये चुने जाते थे और उनकी संख्या २०० तक हो सकती थी। सन् १९०८ में शाह ने राष्ट्रीय सभा तोड़ दी जिसके कारण राज्य में विद्रोह हो गया। राष्ट्रीय सभा फिर से संगठित हुई और शाह ने सिंहासन परित्याग कर दिया। आज कल सिंहासन पर शाह का बड़ा लड़का है जिसकी अवस्था इस समय १९ वर्ष की है। आज कल जो राष्ट्रीय सभा की मजलिस है उसके १२० सदस्य हैं। शासन का कार्य एक केबिनेट या मंत्रि-मंडल द्वारा होता है जिसके ७ सदस्य हैं। उत्तरीय फारस के बहुत बड़े अंश में शासन तथा प्रबंध आदि में स्वार्थ के कारण तथा राजनैतिक हेतु से रूसियों का तथा दक्षिण फारस के बहुत बड़े अंश के शासन और प्रबंध में अँगरेजों का बहुत कुछ हाथ है। फारस की खाड़ी में अंगरेजों का ही पूर्ण अधिकार है।

इसका दूसरा नाम इथिओपिया है। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। गाँवों का शासन प्रायः वहाँ के सरदारों के

हाथ में होता है और जिलों या प्रांतों के शासन के लिये राज्य द्वारा अधिकारी नियुक्त होते हैं।

(६) एबीसीनिया। यहाँ की शासन-प्रणाली प्रायः युरोप के मध्यकालिक युग की शासन-प्रणाली से मिलती जुलती है। यहाँ एक राज-सभा भी है। इसीके सदस्यों के अधीन प्रांतों के शासक और गाँवों के सरदार होते हैं। अभी हाल में वहाँ के राजा ने एक मंत्रि-मंडल भी स्थापित किया है जिसमें भिन्न भिन्न विभागों के अनेक मंत्री हैं। राज्य का आंतरिक प्रबंध तो स्वतंत्र है, पर तौ भी वहाँ ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और इटली को अनेक व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हैं जिनके कारण विदेशी राज्यों से राज्य का स्वतंत्र संबंध नहीं हो सकता। वहाँ की शांति-रक्षा का भार भी इन्हीं तीनों ने मिल कर अपने ऊपर लिया है। वहाँ के व्यापार तथा रेलों आदि के बनाने का प्रबंध भी ये ही तीनों करते हैं और बाहर से राज्य में हथियार या गोला बारूद आदि नहीं आने देते।

यह एक स्वतंत्र राजसत्तात्मक राज्य है और यहाँ का शासक सुलतान कहलाता है। राज्य में चोरी और डकैती बहुत होती है, इसीलिये वहाँ का व्यापार

(७) ओमन। नहीं बढ़ने पाता। भारतीय सरकार से सुलतान को कुछ वार्षिक वृत्ति मिलती है। इंगलैंड और फ्रांस पर यहाँ की शांति-रक्षा का भार है। राज्य का कोई अंश यदि हस्तांतरित हो सकता है तो केवल अंगरेजों के हाथ ही और किसी के हाथ नहीं।

(८) कोस्टा रीका। यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। शासन सभापति के द्वारा होता है जो चार वर्ष के लिये चुना जाता है। कानून बनाने के लिये एक प्रतिनिधि सभा है जिसमें ४३ प्रतिनिधि होते हैं। राजकार्य में सभापति को सहायता या सम्मति देने के लिये ५ प्रतिनिधियों की एक स्थायी समिति भी है। जिस समय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन नहीं होता उस समय यही समिति काम चलाती है। सभापति पाँच विभागों के लिये पाँच मंत्री नियुक्त करता है और वे सब उसी के प्रति उत्तर-दाई होते हैं।

(९) कोलंबिया। यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये एक कांग्रेस है जिसमें सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा सम्मिलित है। सिनेट में ३५ सदस्य होते हैं जो विशेषतः इसी कार्य्य के लिये चुने हुए लोगों के द्वारा चुने जाते हैं। प्रतिनिधि सभा में ९२ सदस्य होते हैं। प्रति ५०,००० निवासियों की ओर से चुना हुआ एक प्रतिनिधि होता है। दोनों के सदस्य चार बरस के लिये चुने जाते हैं। दोनों की सम्मिलित कांग्रेस में बहुमत से चार वर्ष के लिये एक सभापति और एक उप-सभापति चुना जाता है। भिन्न भिन्न विभागों के लिये छ मंत्री हैं।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये एक जातीय कांग्रेस है जिसमें छः प्रांतों के २४ सदस्यों

का एक सिनेट तथा प्रति २५,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि के हिसाब से ८३ प्रतिनिधियों की एक सभा सम्मिलित है।

(१०) क्यूबा।

चुनाव में सम्मति देने का अधिकार प्रत्येक पुरुष को है। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न विभागों के मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है। शासन कार्य्य के लिये चार वर्ष के लिये एक सभापति और एक उप-सभापति चुना जाता है जो लगातार दो बार से अधिक अधिकारारूढ़ नहीं रह सकता।

(११) ग्रीस। दे० "यूनान"।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये सर्वसाधारण द्वारा चुने हुए ६९ सदस्यों की एक जातीय सभा है। प्रति २०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि इस सभा में होता है। प्रत्येक पुरुष को वोट देने के अधिकार हैं।

(१२) ग्वेटेमाला।

शासक सभापति वोट द्वारा छः वर्ष के लिये चुना जाता है, और एक बार चुने हुए सभापति का चुनाव आगे बराबर हो सकता है। १३ सदस्यों की एक राज-सभा भी है। उसके कुछ सदस्य जातीय सभा चुनती है और कुछ सभापति द्वारा नियुक्त होते हैं।

यहां प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये वहां सिनेटरों और डिप्टियों की एक जातीय सभा है। छः वर्ष के लिये चुने हुए ३७ सिनेटर होते हैं और तीन वर्ष के लिये चुने हुए १०८ डिप्टी। प्रति ३०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि होता है और २१ वर्ष से अधिक

(१३) चिली।

की अवस्था के प्रत्येक पढ़े लिखे युवक को चुनाव में सम्मति देने का अधिकार है। ५ वर्ष के लिये एक शासक सभापति चुना जाता है जो फिर दोबारा नहीं चुना जा सकता। यदि किसी बिल पर सभापति को कुछ आपत्ति हो और वह बिल डिप्टियों की सभा में वापस भेजा जाय तथा यदि उस सभा के उपस्थित सदस्यों में से दो तृतीयांश सदस्य उस बिल के पक्ष में हों तो उस दशा में वह बिल अवश्य पास हो जायगा। राजकार्य्य में सभापति को सहायता देने के लिये एक राज्य-सभा में पांच सदस्य सभापति द्वारा नियुक्त होते हैं, और छः कांग्रेस द्वारा। इसके अतिरिक्त छः मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है।

सन् १९१२ के आरंभ तक यहां राजसत्तात्मक राज्य था और यहां का सारा राजकार्य्य एक मात्र सम्राट् के इच्छानुसार ही होता था। पर इधर कई वर्षों से वहां के

(१४) चीन। लोग शासन-प्रणाली में सुधार करने लग गए थे। अंत में १२ फरवरी सन् १९१२ से यहां प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य स्थापित हो गया। जातीय सभा में ६४ सदस्यों की सिनेट और ५९६ प्रतिनिधियों का मंडल सम्मिलित है। प्रत्येक प्रांत से प्रति ८,००,००० निवासियों का एक प्रतिनिधि जातीय सभा के लिये चुना जाता है। वर्तमान युरोपीय महायुद्ध छिड़ने के बाद जापान ने यहाँ के अनेक राजकार्य्यों में बहुत कुछ अधिकार प्राप्त कर लिया है। अब चीन स्वतंत्र रूप से विदेशी राष्ट्रों के साथ किसी प्रकार का संबंध स्थापित नहीं कर सकता।

यहां राजसत्तात्मक राज्य है। यहां का राजा मिकाडो कहलाता है। मंत्रि-मंडल की सम्मति और सहायता से मिकाडो सारे राज्य की शासन और प्रबंध करता है। मंत्रियों को मिकाडो स्वयं नियत करता है। इसके अतिरिक्त एक प्रीवी काउंसिल भी है, जिससे आवश्यकता पड़ने पर मिकाडो सम्मति और सहायता लेता है। युद्ध या संधि आदि करने का पूरा अधिकार सम्राट् मिकाडो को ही है। पार्लमेंट की सम्मति से कानून बनाने का अधिकार भी सम्राट् को ही है। कानूनों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करना और पार्लमेंट रखना, वंद करना या तोड़ना आदि सब सम्राट् के अधिकार में है पार्लमेंट में दो सभाएँ हैं—एक हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) और एक प्रतिनिधि सभा। ये दोनों सभाएँ इंगलैंड की लार्ड्स और कामंस सभाओं की तरह ही हैं। प्रत्येक कानून के लिये पार्लमेंट की स्वीकृति की आवश्यकता होती है। हाउस आफ पीयर्स में राजघराने के तथा अन्यान्य बड़े आदमी और रईस होते हैं। सन् १९१२ में इसके सदस्यों की संख्या ३६७ थी, प्रतिनिधि सभा में उस समय ३२१ सदस्य थे। प्रतिनिधियों के चुनाव में प्रत्येक कर देनेवाले पुरुष को सम्मति देने का अधिकार है। ३० वर्ष से अधिक अवस्था का प्रत्येक जापानी पुरुष प्रतिनिधि सभा में निर्वाचित हो सकता है। परंतु मिकाडो के निज के कर्म्मचारी, धर्म्माधिकारी, विद्यार्थी, और पाठशालाओं के अध्यापक आदि उक्त सभा के सदस्य नहीं हो सकते। दोनों

(१५) जापान

सभाओं के सभापतियों और उप-सभापतियों को सम्राट्, उन्हीं में से, नियत करता है। पार्लामेंट का अधिवेशन प्रति वर्ष होना आवश्यक है। सारा आर्थिक प्रबंध पार्लामेंट ही करती है। जेरिसा, फारमोसा, डेस्काडोर्स (फिशर्स द्वीपपुंज) क्वांटंग, सखेलिन और कोरिया ये छ जापान के अधीनस्थ राज्य हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है और यहाँ का राजा सुलतान कहलाता है। सन् १८७६ में सुलतान ने शासन-कार्य्य में प्रजा को कुछ अधिकार दिए थे, पर दूसरे ही वर्ष

(१६) टर्की। फिर छीन लिए थे, तब से मुसलमानी धर्म्म के अनुसार समस्त राज्य में सुलतान का ही अनियंत्रित राज्य था। पर जूलाई सन् १९०८ से यहाँ फिर से पार्लामेंट स्थापित हो गई। सुलतान को सम्मति और सहायता देने के लिये चौदह मंत्रियों का एक मंडल है। सब मंत्री सुलतान द्वारा नियुक्त होते हैं परंतु ये सब पार्लामेंट के प्रति उत्तरदाई होते हैं। पार्लामेंट में दो सभाएँ हैं— एक सिनेट और दूसरी चेंबर आफ डिप्टीज़। सिनेटरों को सुलतान स्वयं नियुक्त करता है और डिप्टियों का चुनाव, जिनकी संख्या २८० होती है, सर्वसाधारण के प्रतिनिधियों द्वारा होता है। राज्य के भिन्न भिन्न विभागों के मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है। मिस्र इसका करद राज्य था पर कई विशेष कारणों से सन् १८८३ से अँगरेजों की ओर से यहाँ एक अधिकारी नियुक्त रहता था जो वहाँ के आर्थिक प्रबंध की देख रेख करता था। वर्त्तमान महायुद्ध में अँगरेजों ने प्रायः पूर्ण रूप से मिस्र पर अधिकार कर लिया है।

इसी प्रकार क्रीट द्वीप भी पहले टर्की का करद राज्य था पर वर्त्तमान युद्ध में उस पर से भी टर्की का अधिकार उठ गया है।

(१७) डेन्मार्क। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है और शासन का कार्य राजा तथा मंत्रियों के हाथ में है। नया कानून बनाने अथवा पुराने कानून में परिवर्त्तन करने का अधिकार पार्लमेंट को है जो राजा से मिल कर कार्य करती है। पार्लमेंट में दो सभाएँ हैं, एक उच्च और दूसरी साधारण। उच्च सभा में ६६ सदस्य होते हैं जिनमें से १२ को राजा आजन्म के लिये नियुक्त करता है और बाकी ५४ सदस्य सर्वसाधारण द्वारा आठ वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। इनमें से आधे प्रति चौथे वर्ष बदले जाते हैं। इस सभा में केवल बड़े आदमी ही निर्वाचित हो सकते हैं। साधारण सभा में ११४ सदस्य होते हैं जो सर्वसाधारण द्वारा तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं। प्रति १६,००० निवासियों की ओर से एक सदस्य होता है। पार्लमेंट का अधिवेशन प्रति वर्ष होता है। उच्च सभा कानून बनाने के अतिरिक्त न्याय-विभाग के लिये अपने ही सदस्यों में से जज भी चुनती है। मंत्रिगण दोनों सभाओं में जा सकते हैं पर बिना उनके सदस्य हुए सम्मति नहीं दे सकते। आइसलैंड, ग्रीनलैंड, फैरोज़ तथा वेस्ट-इंडीज के कुछ द्वीप डेन्मार्क के अधीनस्थ राज्य हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। शासन संबंधी समस्त

अधिकार राजा को है जो मंत्रि-मंडल की सहायता से सब काम करता है। कानून बनाने के लिये स्टारटिंग (Starting) नाम की एक व्यवस्थापक सभा है। राजा किसी बिल को दो बार अस्वीकृत कर सकता है; परंतु यदि वही बिल व्यवस्थापक सभा की तीन बैठकों में स्वीकृत हो चुका हो तो राजा की सम्मति के बिना ही पास हो जाता है। ५ वर्ष से नारवे में रहनेवाले प्रत्येक विदेशी, नारवे के २५ वर्ष से अधिक अवस्थावाले प्रत्येक पुरुष और कुछ निश्चित कर देनेवाली प्रत्येक स्त्री को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। प्रति तीसरे वर्ष व्यवस्थापक सभा के सदस्यों का चुनाव होता है। व्यवस्थापक सभा अधिवेशन के समय दो उक्त सभाओं में विभक्त हो जाती है। उसमें से एक सभा लैगटिंग (Lagting) और दूसरी ओडेल्स्टिग (Odelsting) कहलाती है। पहली में एक चौथाई और दूसरी में तीन चौथाई सदस्य होते हैं। दोनों सभाएँ अपने अपने सभापति आप नियत करती हैं। कानून-संबंधी प्रश्नों पर दोनों सभाओं में पृथक् पृथक् विचार होता है। पहले ओडेल्स्टिग के सामने उपस्थित होने के उपरांत तब लैगटिंग के सामने स्वीकृत या अस्वीकृत होने के लिये बिल आते हैं। यदि दोनों सभाओं में मतभेद होता है तो विचार के लिये दोनों का सम्मिलित अधिवेशन होता है और दो तृतीयांश सदस्यों का जो मत होता है वही अंतिम निश्चय समझा जाता है। मंत्रिगण इन सभाओं में जा सकते हैं पर बिना सदस्य हुए सम्मति नहीं

(१८) नारवे।

दे सकते। जल और स्थल सेना पर केवल राजा का ही अधिकार है।

(१९) निकारागुआ। यहाँ प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य है। शासनाधिकार सभापति के हाथ में होता है जो ६ वर्ष के लिये चुना जाता है और जिसकी सहायता के लिये एक मंत्रि-मंडल है। कानून बनाने के लिये एक कांग्रेस है जिसमें १३ सदस्यों की सिनेट और ४० सदस्यों की चेंबर आफ डिप्टीज़ है। सिनेटर और डिप्टी चार वर्ष के लिये सर्वसाधारण द्वारा चुने जाते हैं। अभी यहाँ का शासन-संगठन ठीक नहीं हुआ है, इसलिये सब कार्य्य एक निश्चित कानून के अनुसार होते हैं।

(२०) नेदलैंडस्। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। मंत्रि-मंडल की सहायता से सब काम राजा करता है। मंत्रियों को राजा नियुक्त करता है पर वे व्यवस्थापिक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। पार्लामेंट में दो सभाएँ हैं—एक उच्च या प्रथम और दूसरी साधारण या द्वितीय। प्रथम सभा में नौ वर्ष के लिये चुने हुए ५० सदस्य होते हैं जिनमें से एक तृतीयांश प्रति तीसरे वर्ष बदले जाते हैं और द्वितीय सभा में चार वर्ष के लिये चुने हुए सौ सदस्य होते हैं। सदस्य चुनने का अधिकार प्राप्त करने के लिये पुरुषों को अपनी रजिस्टरी करानी पड़ती है। इस समय पुरुषों में से ६४ प्रति सैकड़े इस प्रकार रजिस्टरी किए हुए हैं। २५ वर्ष से कम अवस्था का पुरुष सदस्य नहीं चुन सकता। नए बिल उपस्थित करने का अधिकार या तो सरकार को है या साधारण

अथवा द्वितीय सभा को। उच्च या प्रथम सभा उन्हें केवल स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकती है। उनमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन तक करने का अधिकार उच्च सभा को नहीं है। इसके अतिरिक्त एक राज-सभा भी है जिसमें चौदह सदस्य होते हैं। इसका सभापति स्वयं राजा होता है और वही इसके सदस्य भी चुनता है। शासन-संबंधी कुल काम इस सभा के हाथ में हैं; पर बहुधा इससे कानूनी विषयों में ही सम्मति ली जाती है। इस समय यहाँ का शासनाधिकार रानी के हाथ में है जिनकी माता रीजेंट के रूप में कार्य करती हैं। ईस्ट-इंडीज के द्वीप-पुंज में बहुत से द्वीप नेदलैंड के उपनिवेश हैं जिनमें से सुमात्रा, जावा, बाली, लंबक, बोर्नियो, सेलीबीस आदि प्रसिद्ध हैं। वेस्ट-इंडीज़ में भी सुरीनम तथा छ और छोटे छोटे द्वीप भी इसके उपनिवेश हैं।

(२१) नेपाल। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है; पर राजा के अधिकार बहुत ही संकुचित हैं। शासन आदि के संबंध के कुल अधिकार प्रधान मंत्री को ही हैं।

(२२) पनामा। यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। शासनाधिकार सभापति के हाथ में है जो चार वर्ष के लिये चुना जाता है और जिसका चुनाव दोबारा नहीं हो सकता। प्रति १०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि के हिसाब से, प्रतिनिधि-सभा में ३२ सदस्य रहते हैं जिनका सम्मेलन प्रति दूसरे वर्ष होता है।

पहले यहाँ राजसत्तात्मक राज्य था पर अक्तूबर सन्

१९१८ से प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य हो गया है। यहाँ एक राष्ट्रीय परिषद् है जिसमें प्रजा के द्वारा, तीन वर्ष के लिये चुने हुए १६४ सदस्य रहते हैं। इसके अतिरिक्त म्युनिसिपल कौंसिलों के चुने हुए ७१ सदस्यों की एक और सभा है। दोनों सभाएँ मिल कर चार वर्ष के लिये एक सभापति चुनती हैं जो दोबारा नहीं चुना जा सकता। सभापति की अवस्था ३५ वर्ष से कम न होनी चाहिए। वही मंत्रियों को नियुक्त करता है परंतु वे मंत्री पार्लमेंट के सम्मुख उतरदायी होते हैं। आवश्यकता पड़ने पर प्रति दसवें वर्ष यहाँ के शासन-प्रबंध में सुधार या परिवर्त्तन भी किया जा सकता है।

(२३) पुर्त्तगाल।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने का अधिकार सिनेट और प्रतिनिधि सभा को है जिसके सदस्यों का चुनाव सर्वसाधारण की सम्मति से होता है। सिनेटर ५२ और प्रतिनिधि १५२ होते हैं। सिनेटर या डिप्टी या तो अच्छी निश्चित आयवाले होने चाहिएँ या विद्वान्। प्रति दूसरे वर्ष एक तृतीयांश सदस्य बदले जाते हैं। कांग्रेस का अधिवेशन प्रति वर्ष तीन मास तक होता है। बीच में भी आवश्यकता पड़ने पर उसका अधिवेशन हो सकता है; पर ऐसा अधिवेशन ४५ दिनों से अधिक तक नहीं हो सकता। चार वर्ष के लिये चुना हुआ एक वेतनभोगी सभापति होता है जो एक बार पदत्याग करने के उपरांत चार वर्ष से पहले दोबारा नहीं चुना जा सकता। दो उपसभापति भी होते हैं,

(२४) पेरू।

जिन्हें कुछ वेतन नहीं मिलता। छ मंत्रियों के एक मंत्रिमंडल की सहायता से सभापति शासनकार्य करता है। सभापति की आज्ञाओं आदि पर मंत्रियों के हस्ताक्षर आवश्यक होते हैं।

(२५) पैराग्वे। यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये पार्लमेंट में प्रति १२,००० निवासियों की ओर से एक सिनेटर और प्रति ६००० निवासियों की ओर से एक डिप्टी चुना जाता है। जिन प्रांतों की आबादी कुछ कम होती है उनमें इस हिसाब में कुछ रिआयत की जाती है। चार वर्ष के लिये चुने हुए एक सभापति के हाथ में शासन का अधिकार होता है जो पाँच मंत्रियों के एक मंत्रिमंडल की सहायता से शासन करता है।

(२६) फारस। दे० "ईरान"।

(२७) बलगेरिया। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। राजा की सहायता के लिये एक पार्लमेंट या जातीय सभा है जिसमें प्रति २०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। इस समय इसमें २१३ सदस्य हैं। तीस वर्ष से अधिक अवस्था के पढ़े लिखे लोग प्रतिनिधि हो सकते हैं। पार्लमेंट का समय चार वर्ष तक है। यदि राजा चाहे तो बीच में ही पार्लमेंट तोड़ सकता है; पर इस दशा में उसे दो मास के अंदर ही नई जातीय सभा का संगठन करना होता है। इस सभा में जो कानून पास होते हैं उनके जारी होने के लिये राजा की

स्वीकृति की आवश्यकता होती है। मंत्रियों को भी राजा ही नियुक्त करता है। यदि कोई प्रदेश लेने या छोड़ने, संगठन में परिवर्तन करने, सिंहासन खाली होने पर नए राजा के सिंहासनारूढ़ होने या रीजेंट नियुक्त करने की आवश्यकता हो तो एक विशेष जातीय सभा का संगठन होता है जिसमें साधारण सभा से दूने सदस्य होते हैं।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है; पर तौ भी शासन के काम में प्रजा का बहुत कुछ हाथ है। कानून बनाने का अधिकार राजा, सिनेट तथा प्रतिनिधि सभा को है।

(२८) बेलजियम। राजा की कोई आज्ञा उस समय तक मान्य नहीं होती जब तक उससे सहमत हो कर उस पर कोई मंत्री हस्ताक्षर न कर दे। उस दशा में उसका उत्तरदाता वही मंत्री हो जाता है। राजा अपने इच्छानुसार सिनेट और प्रतिनिधि सभा का संगठन कर सकता है अथवा उन्हें तोड़ सकता है। यदि कोई पुरुष उत्तराधिकारी न हो तो दोनों सभाओं की स्वीकृति से राजा किसी को अपना उत्तराधिकारी चुन सकता है। यदि उत्तराधिकारी अट्ठारह वर्ष से कम अवस्था का हो तो दोनों सभाएँ मिल कर रीजेंट नियुक्त करती हैं। प्रतिनिधि सभा में जितने सदस्य होते हैं, उसके आधे सदस्य सिनेट में प्रजा द्वारा चुने जाते हैं और बाकी प्रांतीय कौंसिलों द्वारा नियुक्त होते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव प्रजा ही करती है। प्रति ४०,००० निवासियों का एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं हो सकता। सिनेटर आठ वर्ष के लिये और प्रतिनिधि चार वर्ष के लिये चुने जाते हैं

और आधी अवधि बीतने पर आधे बदल दिए जाते हैं। सिनेटर और प्रतिनिधि होने के लिये आय और आदर संबंधी कुछ विशिष्ट प्रतिबंध हैं। कुछ निश्चित कर देनेवाला ३५ वर्ष से अधिक अवस्था का बाल बच्चेदार मनुष्य एक वोट अधिक दे सकता है। इसके अतिरिक्त और भी कई बातें ऐसी हैं जिनके कारण एक ही मनुष्य तीन वोट तक दे सकता है। सन् १९१०-११ में एक पंचमांश वोट देनेवाले ऐसे थे जिनके तीन वोट थे, एक पंचमांश ऐसे थे जिनके दो वोट थे, और शेष तीन पंचमांश ऐसे थे, जो केवल एक ही वोट दे सकते थे। वोट न देनेवाले को सरकार की ओर से दंड मिलता है। सिनेट और चेंबर का अधिवेशन प्रति वर्ष नवंबर मास में होना आवश्यक होता है और प्रत्येक अधिवेशन कम से कम ४० दिन तक होना चाहिए। राजा को बीच में भी उनका अधिवेशन करने का अधिकार है। वह दोनों को अथवा किसी एक को तोड़ भी सकता है। जो सभा तोड़ी जाय उसका पुनर्गठन ४० दिनों के अंदर और अधिवेशन दो महीने के अंदर होना चाहिए। दस विभागों के दस मंत्रियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे मंत्री भी हैं जिनका विशेष अवसरों पर आह्वान होता है।

(वर्त्तमान महायुद्ध में बेलजियम-सरकार का अधिकार बेलजियम से उठ गया है। इस समय यह प्रदेश जर्मनी के अधिकार में है और वहाँ फौजी-कानून जारी है। जर्मनी की ओर से वहाँ एक सैनिक गवर्नर-जनरल नियुक्त है।)

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का चुनाव

जनसाधारण द्वारा चार वर्ष के लिये होता है और एक बार चुना हुआ सभापति दोबारा नहीं चुना जा सकता। इसके अतिरिक्त कानून आदि बनाने के लिये जन-साधारण द्वारा चुने हुए १६ सिनेटर और ७५ प्रतिनिधि होते हैं। प्रत्येक पढ़े लिखे मनुष्य को चुनाव में सम्मति देने का अधिकार है। सिनेटरों का एक तृतीयांश और डिप्टियों का अर्द्धांश प्रति दो वर्ष के उपरांत बदला जाता है। दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन ६० से ९० दिनों तक प्रति वर्ष होता है। आवश्यकता पड़ने पर बीच में भी अधिवेशन हो सकता है। एक सभापति, दो उप-सभापति और छ मंत्री मिल कर शासन-कार्य्य करते हैं।

(२९) बोलीविया।

यह छोटी छोटी इक्कीस रियासतों का समूह है। प्रत्येक रियासत स्वतंत्र है और अपना प्रबंध आप करती है। समस्त राष्ट्र-संगठन के लिये राष्ट्रपति की स्वीकृति से जातीय परिषद कानून बनाती है। प्रति वर्ष ३ मई को इसका अधिवेशन आरंभ होता है और चार मास तक होता रहता है। परिषद में ६३ सिनेटर और २१२ डिप्टी होते हैं। सिनेटर ९, ६ अथवा ३ वर्ष के लिये और डिप्टी तीन वर्ष के लिये सर्वसाधारण द्वारा चुने जाते हैं। भिखमंगों और सिपाहियों आदि को छोड़ कर २१ वर्ष से अधिक अवस्था का पढ़ा लिखा प्रत्येक मनुष्य चुनाव में सम्मति दे सकता है। जल तथा स्थल-सेना पर राष्ट्रपति का पूरा अधिकार होता है और वही मंत्रियों को

(३०) ब्रेजिल।

नियुक्त करता अथवा हटाता है। बहुत से अंशों में युद्ध तथा संधि करने का अधिकार भी उसीको होता है।

(३१) मांटीनीग्रो। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। छ मंत्रियों की सहायता से सब कार्य्य राजा करता है। प्रजा द्वारा चार वर्ष के लिये चुने हुए ६२ डिप्टियों तथा सरकार द्वारा नियुक्त १२ अफसरों तथा सदस्यों की एक व्यवस्थापक सभा भी है जिसका अधिवेशन हर १३ नवंबर को होता है।

(३२) मेक्सिको। यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। संगठन प्रायः अन्य प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यों की तरह ही है।

(३३) मोनाको। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। राजा द्वारा नियुक्त एक मंत्री तथा तीन कौंसिलरों के द्वारा शासन-कार्य्य होता है। चार वर्ष के लिये चुने २१ सदस्यों की जातीय परिषद भी है।

(३४) मोरोको। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। सब कार्य्य नाममात्र के लिये वहाँ के सुलतान की आज्ञा से होता है, पर वास्तव में यह एक प्रकार से फ्रांस का रक्षित राज्य है। देश का सारा प्रबंध फ्रेंच सरकार के आज्ञानुसार ही होता है।

(३५) यूनान। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये प्रजा द्वारा चुने हुए १७७ सदस्यों की एक सभा है। सदस्यों का चुनाव प्रति चौथे वर्ष होता है। भिन्न भिन्न विभागों के लिये आठ मंत्री भी हैं, जिनकी नियुक्ति राजा करता है। ये मंत्री

व्यवस्थापक सभा के भी सदस्य होते हैं और उसीके प्रति उत्तरदायी भी होते हैं।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। ६ वर्ष के लिये चुने हुए १९ सिनेटरों और ३ वर्ष के लिये चुने हुए ७५ डिप्टियों की कांग्रेस है जो चार वर्ष के लिये सभापति या राष्ट्रपति चुनती है। राष्ट्रपति के पद के लिये एक मनुष्य का चुनाव दोबारा नहीं हो सकता।

(३६, युरुग्वे।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। कानून बनाने के लिये एक पार्लमेंट भी है जिसमें ११९ सिनेटर और १८३ डिप्टी होते हैं। राज-कार्य्य मंत्रि-मंडल द्वारा होता है जो पार्लमेंट के प्रति उत्तरदायी है। पार्लमेंट के पास किए हुए कानूनों को रद्द करने का पूर्ण अधिकार राजा को है।

(३७) रुमानिया।

पहले यहाँ राजसत्तात्मक राज्य था, पर अभी हाल में विप्लव होने के कारण प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य हो गया है। अभी तक वहाँ का शासन-संगठन निश्चित नहीं हुआ है।

(३८) रूस।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। १५ कौंसिलरों तथा ५३ डिप्टियों की पार्लमेंट है। डिप्टियों का चुनाव ६ वर्ष के लिये होता है और आधे डिप्टी प्रति तीसरे वर्ष बदले जाते हैं। आज कल यहाँ का शासन एक रानी के हाथ में है।

(३९) लक्समबर्ग।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। ६ वर्ष के लिये

चुने हुए आठ सिनेटरों तथा चार वर्ष के लिये चुने हुए चौदह प्रतिनिधियों की एक कांग्रेस है।

(४०) लाइबेरिया। चुनाव में सम्मति देने का अधिकार केवल हब्शियों को ही है। सभापति की सहायता के लिये सात मंत्रियों का एक मंत्रि-मंडल भी है। सभापति और उप-सभापति का चुनाव चार वर्ष के लिये होता है।

(४१) वेनेज्वेलो। यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। इसके अंतर्गत बीस छोटी छोटी स्वंतत्र रियासतें हैं। चार वर्ष के लिये चुने हुए, तीस वर्ष से अधिक अवस्थावाले ४० सिनेटरों और चार वर्ष के लिये चुने हुए ११७ डिप्टियों की एक कांग्रेस है। सभापति का चुनाव चार वर्ष के लिये होता है।

(४२) सर्विया। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। राजा की सहायता के लिये आठ मंत्रियों की एक कौंसिल है और एक राष्ट्र-सभा है जिसके आठ सदस्य राजा नियुक्त करता है और आठ सदस्य जातीय सभा द्वारा चुने जाते हैं। जातीय सभा में प्रजा द्वारा तीन वर्ष के लिये चुने हुए १६० सदस्य होते हैं। विशेष कार्य्यों के लिये एक बड़ी जातीय सभा का संगठन होता है जिसमें ३२० सदस्य होते हैं। राजमंत्री इसी व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का

चुनाव प्रजा द्वारा होता है। सभापति की अवधि चार वर्ष है और एक बार का चुना हुआ सभापति दोबारा नहीं चुना जा सकता। जातीय सभा के ४२ प्रतिनिधियों का चुनाव प्रति वर्ष प्रजा द्वारा होता है। इस सभा का अधिवेशन प्रति वर्ष फरवरी से मई तक होता है। प्रत्येक अधिवेशन के लिये यह सभा अपना सभापति और उप-सभापति आप ही चुनती है।

(४३) सालवेडर।

यहाँ राज्यसत्तात्मक राज्य है। शासन-कार्य्य एक मंत्रि-मंडल करता है जो व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। व्यवस्थापक सभा में ३६० सिनेटर और ४०४ डिप्टी होते हैं। सिनेटरों में से आधे सदस्य चुने हुए होते हैं और आधे पुश्तैनी अफसर या आजन्म रहनेवाले सदस्य। प्रति ५०,००० निवासियों की ओर से एक डिप्टी होता है। व्यवस्थापक सभा का अधिवेशन प्रति वर्ष होता है। उसका अधिवेशन करने, रोकने या तोड़ने का पूर्ण अधिकार राजा को है। आवश्यकता पड़ने पर सिनेट के सामने मंत्रियों पर कांग्रेस अभियोग भी चला सकती है। राजा की प्रत्येक आज्ञा पर किसी न किसी मंत्री का हस्ताक्षर आवश्यक होता है, क्योंकि मंत्री ही सब दशाओं में उत्तरदायी होते हैं।

(४४) स्पेन।

यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है। मंत्रिमंडल के अतिरिक्त एक व्यवस्थापक सभा भी है जिसमें राज-मंत्री तथा राजा द्वारा

(४५) स्याम। नियुक्त सदस्य होते हैं। इन सदस्यों की संख्या १२ से ४० तक होती है। यही सभा कानून बनाती और उनका संशोधन करती है। इसका अधिवेशन साप्ताहिक होता है। यदि राजा अयोग्य हो तो यह सभा स्वयं ही कानून बना सकती है, पर साधारणत: कानूनों के पास होने पर राजा द्वारा उनके स्वीकृत होने की आवश्यकता होती है। राजा अपने परिवार में से अपना उत्तराधिकारी आप चुनता है। स्याम के अधिकार में जो मलय राज्य हैं उनका प्रबंध वहाँ के राजा, स्याम-सरकार द्वारा नियुक्त कमिश्नरों की देख रेख में करते हैं।

(४६) स्वीडन। यहाँ राजसत्तात्मक राज्य है, शासन-प्रबंध में राजा को सहायता देने के लिये, राज्यद्वारा नियुक्त किए हुए मंत्रियों का एक मंत्रिमंडल और कानून बनाने के लिये एक व्यवस्थापक सभा है। प्रत्येक कानून के प्रचलित होने के लिये राजा की स्वीकृति आवश्यक होती है। व्यवस्थापक सभा या पार्लमेंट के अंतर्गत दो सभाएँ हैं। पहली सभा में १५० सदस्य होते हैं जो प्रांतीय और म्युनिसिपल सभाओं द्वारा निर्वाचित होते हैं। इसके सदस्य वे ही लोग हो सकते हैं जिनकी अवस्था ३५ वर्ष से अधिक हो और जिनकी अच्छी जमींदारी या आय हो। दूसरी सभा में २३० सदस्य होते हैं जिनका चुनाव सर्वसाधारण द्वारा होता है। २४ वर्ष से अधिक अवस्था के प्रत्येक मनुष्य को चुनाव में सम्मति देने का अधिकार है। दोनों सभाओं का सम्मिलित अधिवेशन होता है और उसमें

अधिक संख्या दूसरी सभावालों की ही होती है अतः बहुमत भी प्रायः इसीके पक्ष में होता है। राजा प्रत्येक अधिवेशन का सभापति नियुक्त करता है।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का चुनाव सात वर्ष के लिये होता है जिसकी सहायता के लिये ६ मंत्री होते हैं। एक जातीय सभा भी है जिसमें

(४७) हेटी। सिनेट और हाउस आफ कामंस सम्मिलित हैं। सभापति को और चुननेवाले मनुष्यों की बनाई हुई एक सूची में से सिनेट के ३९ सदस्यों को हाउस चुनता है और हाउस के ९६ सदस्यों का चुनाव तीन वर्ष के लिए वहाँ की हब्शी प्रजा करती है।

यहाँ प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य है। सभापति का चुनाव चार वर्ष के लिये २१ वर्ष की अवस्थावाले प्रत्येक इंडियन पुरुष अथवा १९ वर्ष की अवस्थावाले शिक्षित

(४८) होंडूरास। और विवाहित पुरुष की सम्मति से होता है। एक बार चुना हुआ सभापति फिर से चुना जा सकता है। कांग्रेस के ४२ डिप्टियों का चुनाव भी चार वर्ष के लिये प्रजा ही करती है। प्रति १०,००० निवासियों की ओर से एक प्रतिनिधि होता है। कांग्रेस का अधिवेशन प्रति वर्ष १ जनवरी को आरंभ होता है और ६० दिनों तक होता रहता है।

दसवाँ परिच्छेद ।

उपनिवेश, रक्षित राज्य, अधीन राज्य और करद राज्य ।

उपनिवेश उस देश को कहते हैं जिसमें एक देश या राज्य के लोग आकर सदा के लिये बस जाते और वहीं खेती-बारी या व्यापार आदि करके अपना निर्वाह करते हैं। वे लोग किसी विदेशी शक्ति के अधीन नहीं होते, केवल अपनी मातृभूमि से ही थोड़ा बहुत संबंध रखते हैं। प्राचीन काल में फिनीशिया, यूनान, भारत और रोम आदि देशों के निवासी व्यापार करने के लिये विदेश जाया करते थे और उनमें से कुछ लोग किसी देश में सदा के लिये बस भी जाते थे। वहाँ उन्हें बहुत कुछ आर्थिक लाभ हुआ था जिसका बहुत कुछ अंश उनकी मातृभूमि को भी मिला करता था। दूसरे देशों में बस कर लोग वहाँ अपनी मातृभाषा और धर्म्म आदि का प्रचार भी करते थे आगे चल कर स्पेन, पुर्त्तगाल, फ्रांस, और इंगलैंड आदि देशों के निवासी भी विदेश में आ कर बसने, वहाँ उपनिवेश बनाने और फलतः अपने देश को उन्नत और संपन्न करने लग गए।

उपनिवेश।

अन्य जातियों की अपेक्षा इधर कई सौ वर्षों में अंग्रेज-जाति बहुत आगे बढ़ गई है। इस समय समस्त भूमंडल के स्थल-भाग का छठाँ अंश प्रायः इसी प्रकार उपनिवेश रूप में

बसा हुआ है। ये अंग्रेजी उपनिवेश तीन प्रकार के हैं— (१) राजकीय उपनिवेश (Crown Colonies) जिनमें सारा राजकीय प्रबंध इंगलैंड की सरकार के अधीन ही होता है, (२) नियमित शासनात्मक उपनिवेश जिनके राज्य-कर्म्मचारी तो इंगलैंड की सरकार के अधीन होते हैं पर जो अपने लिये कानून आदि स्वयं बनाते हैं। हाँ, बृटिश सरकार को अधिकार अवश्य होता है कि वह उन कानूनों को रद्द कर दे अथवा प्रचलित होने से रोक दे, और (३) स्वराज्यात्मक उपनिवेश है जो अपना शासन आप करते हैं। ऐसे उपनिवेशों का केवल गवर्नर ही बृटिश सरकार के मातहत होता है और बृटिश सरकार को वहाँ के पास किए हुए कानूनों को रद्द करने अथवा प्रचलित होने से रोकने का अधिकार होता है। ऐसे उपनिवेशों में गवर्नर अपने राजकीय नियमों के अनुसार स्वयं कौंसिलर आदि नियुक्त करता है और उन्हींकी सम्मति तथा सहायता से राजकार्य्य का संचालन तथा कर्म्मचारियों की नियुक्ति होती है। प्रायः इसी प्रकार के उपनिवेश अन्य राज्यों के भी हैं।

आजकल लोगों की प्रवृत्ति स्वराज्यात्मक या प्रतिनिधि-सत्तात्मक शासन की ओर बराबर बढ़ती जाती है, इसलिये उपनिवेशों में भी कुछ लोग पूर्ण प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य चाहते हैं; मातृभूमि का किसी प्रकार का दबाव या अधिकार मानने के लिये वे तैयार नहीं हैं। दबाव या अधिकार मानने में वे अपनी अनेक हानियाँ भी दिखलाते हैं। उदाहरणार्थ, यदि उनकी साम्राज्य सरकार कोई युद्ध ठान ले

तो उन्हें भी व्यर्थ उसमें सम्मिलित होना पड़ता है। पर इसके विपरीत कुछ लोगों का मत है कि अपने देश की साम्राज्य सरकार से उपनिवेशों का यथासाध्य घनिष्ट संबंध रहना चाहिए क्योंकि इससे साम्राज्य के भिन्न भिन्न अंगों की पुष्टि और उन्नति होती है। पर स्वार्थत्याग करके इस प्रकार परोपकार करने की इच्छा करनेवाले देवता संख्या में अपेक्षाकृत थोड़े ही हैं।

रक्षित राज्य।

प्रायः बड़े बड़े साम्राज्यों को अपने अधीनस्थ देशों या राज्यों के पड़ोसी छोटे मोटे देशों और राज्यों पर, अनेक राजनैतिक कारणों से कुछ न कुछ अधिकार रखना पड़ता है। ऐसे राज्य या तो केवल अपने रक्षक-राज्य के द्वारा अथवा उसकी आज्ञा से ही किसी विदेशी राज्य के साथ कोई राजनैतिक संबंध स्थापित कर सकते हैं। रक्षित राज्य की सब प्रकार से रक्षा करना ही रक्षक-राज्य का कर्त्तव्य है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो किसी राज्य को अपना रक्षित राज्य बनाना उसे अपनी अधीनता में लाना ही है। पर किसी बलशाली राज्य का अपने से किसी दुर्बल राज्य के साथ राजनैतिक संबंध स्थापित करना भी इसीके रक्षण के अंतर्गत आ जाता है। रक्षक-राज्य बिना लड़ाई झगड़ा किए ही अपने रक्षित राज्य में मनमाना परिवर्तन कर सकता है। संधि, बल-प्रयोग और बल-पूर्वक देश पर अधिकार करके राज्य रक्षित बनाए जाते हैं। भारत सरकार का देशी रियासतों के साथ बहुत कुछ इसी प्रकार का संबंध है।

रक्षित राज्य प्रायः दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें पहले से किसी प्रकार का राज्य स्थापित होता है और जो शक्ति या बल-प्रयोग आदि के द्वारा रक्षित धर्म में लाए जाते हैं और दूसरे वे जिन में कोई विदेशी सभ्य राज्य आ कर पहले अपना अधिकार कर लेता है और तब उन्हें कुछ आंतरिक स्वतंत्रता दे कर अपनी रक्षा में रखता है।

अधीन राज्य।

जो देश या राज्य अपने ऊपर किसी दूसरे देश या राज्य का कुछ भी अधिकार या दवाव स्वीकार कर लेता है, स्थूलतः वही मानों अधीन राज्य हो जाता है, और इस दृष्टि से उपनिवेश तथा रक्षित राज्य भी, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, इसी कोटि में आ जाते हैं। पर सूक्ष्मतः और व्यावहारिक दृष्टि से अधीन राज्य वही माना जाता है जो सब प्रकार से किसी दूसरे बड़े राज्य के अधिकार में रहता है। अधिकारी राज्य अपने नियुक्त किए हुए शासकों आदि के द्वारा अधीन राज्य में सारा राज्य-प्रबंध करता है, उसके लिये नियम और कानून बनाता है, कर उगाहता है, न्यायालय स्थापित करता है, दूसरी शक्तियों से उसकी रक्षा करता है और इसी प्रकार के दूसरे आवश्यक कर्त्तव्यों का पालन करता है। अधीन राज्य को किसी प्रकार की शक्ति प्रदान करना केवल अधिकारी राज्य के हाथ में होता है। भारत की गणना इंगलैंड के अधीन राज्यों में होती है और इसी से अधीन राज्यों की स्थिति का अच्छा परिचय मिल जाता है। कभी कभी अधिकारी राज्य अपने अधीन राज्यों को बहुत कुछ अधि-

कार और स्वतंत्रता भी दे देते हैं और कहीं कहीं अधीन राज्य के प्रधान अधिकारी को यह भी अधिकार होता है कि साम्राज्य के जटिल प्रश्नों की मीमांसा में सम्मति और सहायता दे। फ्रांस के दो एक अधीन राज्यों के प्रधान अधिकारियों और प्रतिनिधियों को फ्रांस की व्यवस्थापक सभाओं तक में आ कर बैठने और बोलने का अधिकार है।

यदि कोई राज्य किसी दूसरे राज्य पर विजय प्राप्त कर के अंत में उससे संधि कर लेता है और उसकी रक्षा आदि का भार अपने ऊपर ले कर उसके बदले में उससे कुछ निश्चित कर बराबर लिया करता है तो वह विजित और कर देनेवाला राज्य करद राज्य कहलाता है। प्राचीन काल में ऐसे राज्यों की संख्या बहुत होती थी, पर आज कल सदा कुछ निश्चित कर देते रहने की प्रथा उठी जाती है; इसलिये प्रायः नए करद राज्य नहीं होते।

करद राज्य।

(१) ब्रिटिश साम्राज्य।

(क) *उपनिवेश*।

ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड, चैनेल आइलैंड्स, आइल आफ मैन तथा भारतवर्ष को छोड़ कर बृटिश साम्राज्य के अंतर्गत प्रत्येक देश उपनिवेश ही माना जाता है; पर उन उपनिवेशों में भी कुछ ऐसे हैं जो रक्षित राज्य (Protectorates) कहलाते हैं। अतः इस स्थान पर उन सब का एक साथ ही

वर्णन किया जाता है। सुभीते के लिये इन सब उपनिवेशों को चार श्रेणियों में विभक्त कर दिया गया है। पहली श्रेणी उन उपनिवेशों की है जिनमें केवल गवर्नर ही शासन करता और वही कानून बनाता है। इनके दो अंतर्विभाग हैं। एक तो वे जिनके लिये यदि सम्राट् चाहें तो नियमानुसार कानून बना सकते हैं, और ऐसे उपनिवेश जिब्राल्टर, लाबुआन और सेंट हेलना हैं; और दूसरे वे जिनके लिये गवर्नर ही कानून बना सकता है; सम्राट् को किसी प्रकार का कानून बनाने का अधिकार नहीं है। ऐसे उपनिवेश जूलूलैंड, बसुटोलैंड और बेचुआनालैंड हैं। इनमें से अंतिम बेचुआनालैंड उपनिवेश और रक्षित राज्य दोनो है।

दूसरी श्रेणी में के उपनिवेश वे हैं जिनमें एक शासक या गवर्नर रहता है, जो एक व्यवस्थापक सभा की सहायता से कानून बनाता और एक कार्य्यकारिणी सभा की सहायता से शासन करता है। इन दोनों सभाओं या कौंसिलों के मेंबरों की नियुक्ति या तो सम्राट् के द्वारा होती है और या सम्राट् के प्रतिनिधि शासक या गवर्नर के द्वारा। इस श्रेणी के अंतर्गत गैंबिया, ट्रीनीडाड, फाकलैंड टापू, फीजी, बृटिश न्यू गायना, सीरा लिओन, सीलोन (लंका), सेंट विंसेंट और स्ट्रेट सेटलमेंट हैं।

तीसरी श्रेणी में वे उपनिवेश हैं जिनमें व्यवस्थापक सभा के सब या कुछ सदस्य प्रजा द्वारा चुने जाते हैं और कार्य्यकारिणी सभा के सदस्य सम्राट् अथवा उसके प्रतिनिधि शासक (गवर्नर) के द्वारा नियुक्त होते हैं। इस श्रेणी में जमैका,

बरमुडा, बहामा, बारबडोस, बृटिश गायना, मारीशस, माल्टा और लीवर्ड टापू हैं।

चौथी श्रेणी में वे उपनिवेश हैं जिनमें शासक या गवर्नर तो सम्राट् की ओर से होता है पर जिनका शेष सारा राज-कार्य्य प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्यों की तरह होता है। ऐसे उपनिवेश प्रायः एकदम स्वतंत्र होते हैं। आरेंज रीवर उपनिवेश, कनाडा, केप आफ गुडहोप, क्वींसलैंड, ट्रांसवाल, तस्मानिया, न्यू जीलैंड, न्यूफाउंडलैंड, न्यू साउथ वेल्स, नेटाल, पश्चिमी और दक्षिणी आस्ट्रेलिया और विक्टोरिया इसी श्रेणी के अंतर्गत हैं।

प्रधान उपनिवेशों की शासन-प्रणाली।

इसके अंतर्गत कई छोटी छोटी रियासतें हैं जो अपने लिये आप कानून बनाती हैं। सब रियासतों ने मिल कर प्रधान गवर्नमेंट को कुछ निश्चित और विशिष्ट अधिकार दे रखे हैं। यहाँ सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवनर-जनरल रहता है। एक संघटित पार्लामेंट है जिसमें सिनेट और प्रतिनिधि मंडल सम्मिलित है। सिनेट में छः रियासतों में से प्रत्येक के छः छः सदस्य, इस प्रकार कुल ३६ सदस्य होते हैं जो सर्वसाधारण की सम्मति से छः वर्ष के लिये चुने जाते हैं। प्रतिनिधियों का चुनाव तीन वर्ष के लिये और आबादी के हिसाब से होता है। लेकिन प्रत्येक रियासत के कम से कम पाँच प्रतिनिधि होते हैं। सन् १९१६ में कुल ७५ प्रतिनिधि थे।

आस्ट्रेलिया।

यहाँ का शासन-कार्य्य एक प्रीवी कौंसिल की सहायता से एक गवर्नर-जनरल करता है जो सम्राट् द्वारा नियुक्त और उसीका प्रतिनिधि होता है। कानून बनाने के लिये सिनेट और हाउस आफ कामंस की सम्मिलित एक पार्लमेंट है। सिनेट में ८७ सदस्य हैं जिनका चुनाव गवर्नर-जनरल द्वारा होता है। सिनेटर आजन्म सदस्य रहते हैं। सिनेटर की अवस्था तीस वर्ष की होनी चाहिए और उसके पास कुछ निश्चित जमींदारी होनी चाहिए। हाउस आफ कामंस के सदस्यों का चुनाव पाँच वर्ष में अथवा इससे कुछ पहले होता है। हाउस के सदस्यों का चुनाव जन-साधारण की सम्मति से होता है। सन् १९१६ में हाउस के सदस्यों की संख्या २२१ की।

कनाडा।

यहाँ का शासन सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर के हाथ में है। व्यवस्थापक सभा तथा प्रतिनिधि मंडल की सम्मिलित एक सार्वजनिक सभा या पार्लमेंट भी है। व्यवस्थापक सभा के ३२ सदस्य हैं। इनमें से जो लोग १७ सितंबर १८९१ से पहले से नियुक्त हैं वे तो उसके आजन्म सभासद रहेंगे; पर जिनकी नियुक्ति इसके बाद हुई हो, वे केवल सात वर्ष तक सदस्य रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उनकी फिर से नियुक्ति हो सकती है। प्रतिनिधि मंडल में ३० सदस्य हैं जो सर्वसाधारण द्वारा तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं। पार्लमेंट के पास किए हुए बिलों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने का अधिकार गवर्नर को है। पार्लमेंट का आह्वान करने, उसे रोकने तथा

न्यू जीलैंड।

तोड़ देने का अधिकार भी उसको है। पार्लामेंट के पास किए हुए बिलों में सुधार करने के लिये वह उन्हें वापस भी भेज सकता है और नए बिलों के मसौदे भी उपस्थित कर सकता है।

न्यूफाउंडलैंड।

यह सब से पुराना अंग्रेजी उपनिवेश है। यहाँ का शासन ९ सदस्यों की कार्य्यकारिणी सभा की सहायता से सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर करता है। २० सदस्यों की एक व्यवस्थापक सभा भी है जिसकी नियुक्ति भी सम्राट् द्वारा ही होती है। सर्वसाधारण द्वारा चुने हुए ३६ सदस्यों का एक प्रतिनिधिमंडल भी है।

यूनियन आफ साउथ अफ्रिका।

इसमें केप आफ गुडहोप, नेटाल, ट्रांसवाल, और आरेंज रीवर उपनिवेश सम्मिलित हैं। ३१ मई सन् १९१० को यह संघटन हुआ था। यहाँ सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर-जनरल शासन करता है। अपनी सहायता के लिये कार्य्य-कारिणी सभा के सदस्यों को चुनने का अधिकार उसी को है। राज्यों के भिन्न भिन्न विभागों को स्थापित करने का अधिकार भी उसी को है पर उनमें वह निश्चित संख्या से अधिक अफसरों को नियुक्त नहीं कर सकता। कानून बनाने के लिये पार्लामेंट है जिसमें सिनेट और प्रतिनिधि मंडल हैं। गवर्नर-जनरल को अधिकार है कि वह इन दोनों को अथवा इनमें से किसी एक को आह्वान कर सकता है, रोक सकता है, या तोड़ सकता है। पर यूनियन के संगठन से दस वर्ष के अंदर सिनेट नहीं तोड़ी जा सकती। सिनेट के चालीस सदस्यों में से आठ को गवर्नर-जनरल नियुक्त करता है और

३२ सब प्रांतों से चुने जाते हैं। प्रतिनिधि मंडल में १२१ सदस्य हैं। पार्लमेंट की बैठक प्रति वर्ष होना आवश्यक है।

(ख) रक्षित राज्य ।

ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत निम्नलिखित रक्षित राज्य हैं—

(१) यूगांडा ।
(२) जंजीबार ।
(३) नाइगीरिया ।
(४) न्यासालैंड ।
(५) बेचुआनालैंड ।
(६) बृटिश ईस्ट अफ्रिका ।
(७) बृटिश सेंट्रल अफ्रिका ।
(८) सोमाली लैंड और
(९) न्यू जीलैंड ।

इन सब स्थानों में सम्राट् द्वारा नियुक्त गवर्नर, कमिश्नर या रेज़िडेंट कमिश्नर आदि रहते हैं। यहाँ किसी प्रकार की व्यवस्थापक या कार्य्यकारिणी सभा नहीं है। केवल जंजीबार का एक सुलतान अधिकारी है।

(ग) अधीन राज्य—भारतवर्ष ।

भारतवर्ष इंगलैंड का अधीन राज्य है। यहाँ का शासन सम्राट् द्वारा नियुक्त एक गवर्नर-जनरल के हाथ में है। यहाँ बंगाल, मदरास और बंबई ये तीन प्रेसिडेंसियाँ भी हैं जिनका शासन सम्राट् द्वारा नियुक्त गवर्नर करते हैं। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की नियुक्ति पाँच वर्ष के लिये होती है।

भारत के शासन का सब प्रबंध करने के लिये इंगलैंड में एक सेक्रेटरी आफ स्टेट रहता है जिसकी एक कौंसिल भी है। कौंसिल से स्वीकृत स्टेट सेक्रेटरी की प्रत्येक आज्ञा भारत सरकार के लिये मान्य होती है। भारत में जो कानून पास होता है वह उसकी स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। वह सम्राट् को उसे स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने की सम्मति दे सकता है। भारत का सब व्यय आदि भी उसीके अधिकार में है। उसकी कौंसिल में दस से चौदह तक सदस्य होते हैं। उसे भारत के आय-व्यय का लेखा प्रति वर्ष पार्लमेंट में उपस्थित करना पड़ता है। पार्लमेंट के सदस्य उससे भारत के संबंध में प्रश्न भी कर सकते हैं।

गवर्नर-जनरल की दो कौंसिलें हैं—कार्य्यकारिणी और व्यवस्थापक। कार्य्यकारिणी सभा में सात सदस्य रहते हैं जिनमें से सन् १९०९ से एक हिंदुस्तानी भी रहने लगा है। कुछ विशिष्ट दशाओं में गवर्नर-जनरल को, बिना कार्य्यकारिणी सभा से सहायता लिए, स्वतंत्र रूप से कार्य्य करने का भी अधिकार है। सुभीते के लिये गवर्नर-जनरल अपने कार्य्यों और राज्य के भिन्न भिन्न विभागों का भार कार्य्यकारिणी के सदस्यों को भी सौंप देता है; पर अधिकांश कार्य्य गवर्नर-जनरल को कौंसिल की स्वीकृति से ही करने पड़ते हैं। कौंसिल के अधिवेशन प्रायः प्रति सप्ताह होते हैं ६८ सदस्यों की एक व्यवस्थापक सभा भी है जिनमें से ३६ सरकारी और ३२ गैर-सरकारी, प्रजा अथवा विशिष्ट संस्थाओं द्वारा चुने हुए होते हैं। जिस

प्रेसिडेंसी या प्रांत में गवर्नर-जनरल की किसी कौंसिल का अधिवेशन होता है उसके गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नर को भी उसमें सम्मिलित होने का अधिकार होता है। व्यवस्थापक सभा के अधिवेशन जब जब आवश्यकता होती है हुआ करते हैं। उसमें सर्वसाधारण भी जा सकते हैं। उपस्थित होनेवाले बिलों के मसविदे पहले से ही गजट में प्रकाशित कर दिए जाते हैं। प्रायः उन पर प्रांतीय सरकारों की सम्मतियाँ भी ले ली जातीं है।

मदरास, बंबई और बंगाल के गवर्नरों और बिहार तथा ओड़ीसा के लेफ्टिनेंट गवर्नर की तीन तीन सदस्यों की एक कार्य्यकारिणी सभा है। इसके अतिरिक्त इन तीनों गवर्नरों और पंजाब, युक्तप्रांत, बरमा तथा बिहार और ओड़ीसा के चारों लेफ्टिनेंट गवर्नरों की एक एक व्यवस्थापक सभा भी है जिसके सदस्य इस प्रकार हैं—

प्रांत	सरकारी सदस्य	गैर सरकारी स०	विशेष	कुल
मदरास	२०	२६	२	४८
बंबई	१८	२८	२	४८
बंगाल	१८	३१	२	५१
युक्तप्रांत	२१	२६	२	४९
बिहार और उड़ीसा	१८	२३	२	४३
पंजाब	११	१४	२	२७
बरमा	७	९	२	१८

इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश और बरार, आसाम, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रांत, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, बलूचिस्तान तथा पोर्टब्लेयर और निकोबर्स में एक एक चीफ कमिश्नर भी रहता है। इसमें से मध्यप्रदेश और बरार तथा आसाम में एक व्यवस्थापक सभा भी है। फारस की खाड़ी के कुछ स्थानों और अदन तथा टिरिम के लिये एक एक पोलिटिकल रेजिंडट भी हैं।

भारत में कई बड़े बड़े स्वतंत्र देशी राज्य भी हैं जो एक प्रकार से भारत सरकार के रक्षित राज्य हैं। इन राज्यों को कुछ निश्चित संख्या से अधिक सेना, अथवा भारत सरकार की विशेष स्वीकृति के बिना अपने यहाँ किसी युरोपियन कर्म्मचारी को रखने का अधिकार नहीं है। भारत सरकार यदि किसी राजा को कोई अनुचित कार्य करते हुए देखे तो वह उसे अधिकारच्युत भी कर सकती है। कुछ राज्य भारत सरकार को कर भी देते हैं, पर अधिकांश नहीं देते। प्रायः रियासतों का प्रबंध वहाँ के राजाओं, मंत्रियों और कौंसिलों के द्वारा ही होता है, पर प्रत्येक रियासत में एक पोलिटिकल अफसर या रेज़िडेंट भी रहता है जो भारत सरकार की ओर से नियुक्त होता है। कई छोटी छोटी रियासतों के समूह के लिये कहीं कहीं एक ही पोलिटिल अफसर या रेजिडेंट रहता है। सब राज्यों को अपना अपना कानून बनाने का अधिकार है। हैदराबाद, मैसूर, बड़ौदा, काश्मीर, क़लात और राजपुताने तथा मध्य भारत की रियासतें, जिनकी संख्या १७५ है, गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल

के अधिकार में हैं। इसके अतिरिक्त बहुतसी छोटी छोटी रियासतें प्रांतीय सरकारों की अधीनता में भी हैं। चीनी-सीमा तथा पश्चिमोत्तर सीमा में बहुत सी छोटी छोटी रियासतें और पहाड़ी जातियाँ और छोटा नागपुर, ओड़ीसा और मध्यप्रदेश में सरकार के अधीन छोटी छोटी जंगली जातियाँ भी हैं।

हैदराबाद, मैसूर, बड़ोदा और काश्मीर भारत के प्रधान देशी राज्य हैं। नेपाल की गणना भी इन्हीं में होती है; पर कई बातों में वह बिलकुल स्वतंत्र है। इसके उपरांत मध्य-भारत, राजपूताने और बलूचिस्तान की एजेंसियाँ हैं। इनमें ये रियासतें हैं—

मध्य भारत।	गवालियर, इंदौर, भोपाल, रीवाँ, ओड़छा, दतिया, धार, जावरा, पन्ना, विजावर, आजयगढ़, छत्रपुर, चरखारी आदि।
राजपुताना।	उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, बीकानेर, कोटा, बूंदी, अलवर, धौलपुर, आदि।
बलूचिस्तान।	कलात और लास बेला।

प्रांतीय सरकारों से संबंध रखनेवाले राज्य इस प्रकार हैं—

मद्रास।	ट्रावंकोर, कोचीन, पडूकोटा, तथा अन्य छोटी रियासतें।
बंबई।	कोल्हापुर, कच्छ, खैरपुर, ईडर, भावनगर, जूनागढ़, गोंडल, पालनपुर आदि।

बंगाल । } कूचबिहार, भूटान, मोरभंज, कालाहाँडी, बामड़ा आदि ।

युक्तप्रांत । } बनारस, रामपुर और टेहरी ।

पंजाब । } पटियाला, नाभा, झींद, कपूरथला, मंडी, चंबा, फरीदकोट आदि ।

बरमा । } उत्तरी और दक्षिणी श्याम राज्य ।

मध्यप्रांत । } बस्तर, रायगढ़, सरगुजा आदि ।

(२) फ्रेंच उपनिवेश तथा रक्षित राज्य ।

(क) *अफ्रिका में ।*

अलजीरिया । यद्यपि यह प्रदेश अफ्रिका में है पर तौ भी फ्रांस के अंतर्गत ही माना जाता है । यहाँ एक गवर्नर-जनरल रहता है जो १७ सदस्यों की एक कौंसिल के परामर्श से शासन करता है ।

ट्यूनिस । यह एक बे (बेग) का राज्य है जो फ्रांस के रक्षण में है । यहाँ एक फ्रेंच रेजिडेंट-जनरल रहता है जिसके हाथ में प्रायः सभी शासनकार्य्य होते हैं । यहाँ के देशी निवासियों के मुकदमे तो देशी न्यायालयों में जाते हैं पर जिन मुकदमों में कोई युरोपियन वादी अथवा प्रतिवादी होता है उनका फैसला फ्रेंच पंच करते हैं ।

इसके अंतर्गत निम्न-लिखित उपनिवेश हैं—(१) सेनेगाल, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (२) मारीटेनिया, कमिश्नरी। (३) अपर-सेनेगल-नाइगर, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (४) फ्रेंच-गिनी, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (५) आईवरीकोस्ट, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। (६) दहोमी, लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा शासित। ये सब उपनिवेश एक गवर्नर-जनरल के अधिकार में हैं जिसकी सहायता के लिये एक कौंसिल है।

फ्रेंच वेस्ट अफ्रिका (उपनिवेश)

इसका शासन एक गवर्नर-जनरल के अधिकार में है। इसमें गबन, मिडिल कांगो और उबंधी-शरी-चड नामक तीन प्रांत हैं जिनमें से प्रत्येक में एक लेफ्टिनेंट गवर्नर रहता है।

फ्रेंच इंक्वेटोरिकल अफ्रिका।

फ्रेंच ईस्ट अफ्रिका। — यह अफ्रिका का सोमाली कोस्ट प्रदेश है, जो फ्रांस का रक्षित राज्य है। यहां एक गवर्नर रहता है।

मेडागास्कर — गवर्नर-जनरल द्वारा शासित।

यहाँ एक गवर्नर रहता है जिसकी सहायता के लिये एक प्रीवी कौंसिल है। एक जनरल कौंसिल भी है जिसमें प्रजा द्वारा चुने हुए सदस्य रहते हैं।

रीयूनियन उपनिवेश।

(ख) अमेरिका में ।

ग्वाडेलप । } यहाँ एक गवर्नर रहता है । इसके अंतर्गत पाँच छोटे छोटे टापू भी हैं जो रक्षित राज्य हैं ।

गायना उपनिवेश । यहाँ एक गवर्नर रहता है जो ५ सदस्यों की प्रिवी कौंसिल की सहायता से शासन करता है। १६ सदस्यों की एक जनरल कौंसिल भी है जिसके सदस्यों का चुनाव प्रजा करती है।

मारटिनीक उपनिवेश । एक गवर्नर और एक जनरल-कौंसिल के अधिकार में है । यहाँ म्युनिसिपल कौंसिलें भी हैं जिनके सदस्यों का चुनाव प्रजा द्वारा होता है ।

सेंट पीरी और मिकलेन ये छोटे छोटे टापुओं के समूह हैं । यहाँ एक एडमिनिस्ट्रेटर रहता है जो एक कौंसिल के परामर्श से शासन करता है ।

(ग) एशिया में ।

फ्रेंच इंडिया । भारत के पांडीचरी, चंद्रनगर, कारीकल, माही और यनाओं प्रांत फ्रांस के अधिकार में हैं । इनके शासन के लिये पांडीचरी में एक गवर्नर रहता है । शेष स्थानों में उसके अधीन एडमिनिस्ट्रेटर रहते हैं । एक जनरल कौंसिल भी है जिसमें प्रजा के चुने हुए सदस्य होते हैं ।

इसके अंतर्गत कोचीन-चाईना है। यहाँ एक गवर्नर रहता है जो १८ सदस्यों की कौंसिल की सहायता से शासन करता है। इसके अतिरिक्त कंबोडिया, अनाम, टांकिन और लाओस ये चार रक्षित राज्य भी इसके अंतर्गत हैं। अनाम और कंबोडिया में राजा है। टांकिन में पहले अनाम के राजा का वाइसराय रहता था, पर अब फ्रेंच रेज़िडेंट रहता है। लाओस में एक राजा है जो फ्रेंच एडमिनिस्ट्रेटर की सहायता से शासन करता है।

फ्रेंच इंडो-चाइना।

(घ) *ओशीनिया में।*

ओशीनिया में न्यू कैलेडोनिया, सोसाइटी टापू, टहीटी, भूरिया, मारकेसार और गैंबियर आदि बहुत से टापू हैं जो सब एक गवर्नर के अधिकार में हैं। गवर्नर की एक प्रीवी कौंसिल और एक एडमिनिस्ट्रेटिव कौंसिल है।

एलजीरिया और ट्युनिस को छोड़ कर शेष सब उपनिवेशों के लिये फ्रांस में एक उपनिवेश मंत्री है और औपनिवेशिक सेनाएँ फ्रांस के युद्ध-सचिव के अधीन हैं। प्रत्येक उपनिवेश अथवा उपनिवेशों के समूह का अलग बजट तैयार होता है जो औपनिवेशिक मंत्री की स्वीकृति के लिये भेजा जाता है। उपनिवेशों को स्वराज्य के बहुत से अधिकार प्राप्त हैं। उनका खर्च प्रायः अपनी ही आय से चलता है और यदि कुछ कमी होती है तो उसकी पूर्त्ति फ्रेंच सरकार करती है। फ्रांस की जातीय सभा में निम्नलिखित उपनिवेशों से इस प्रकार प्रतिनिधि जाते हैं—

अलजीरिया।	तीन सिनेटर और छः डिप्टी।
मारटिनिक ग्याडेलप रीयूनियन	प्रत्येक से एक सिनेटर और दो डिप्टी।
फ्रेंच इंडिया।	एक सिनेटर और एक डिप्टी।
गायना सेनेगाल कोचीन-चाइना	एक एक डिप्टी।

(३) जर्मन उपनिवेश और अधीन राज्य।

(क) *अफ्रिका में।*

ईस्ट आफ्रिका। यह रक्षित राज्य है और यहाँ एक इंपीरियल गवर्नर रहता है। इसमें नौ प्रांत हैं जिनमें से प्रत्येक में एक एड-मिनिस्ट्रेटर रहता है जिसकी एक कौंसिल होती है। कौंसिल में ३ से ५ तक सदस्य हैं जिन्हें गवर्नर नियुक्त करता है; पर उसमें से देशियों का एक प्रतिनिधि होना आवश्यक है। अर्थ प्रबंध और शासन संबंधी अनेक प्रश्न इन्हीं कौंसिलों में उपस्थित होते हैं।

केमरून। यह रक्षित राज्य है और यहाँ इंपीरियल गवर्नर रहता है। गवर्नर की सहायता के लिये एक चांसलर, दो सेक्रेटरी और एक कौंसिल है। कौंसिल में तीन देशी व्यापारी सदस्य होते हैं।

टोगोलैंड। यहाँ का शासन एक इंपीरियल गवर्नर करता है जिसकी सहायता के लिये एक सेक्रेटरी, एक चुंगी का अफसर और एक कौंसिल है। कौंसिल में सात गैर सरकारी सदस्य होते हैं।

साउथ वेस्ट अफ्रिका — यह रक्षित राज्य है और इंपीरियल गवर्नर द्वारा शासित होता है।

(ख) *एशिया में।*

कियाऊचाऊ। यह प्रांत जर्मनी ने ९९ बरस के पट्टे पर चीन से लिया था और उसका रक्षित राज्य समझा जाता था। यहाँ उसका एक जहाजी बेड़ा रहता था और एक गवर्नर शासन करता था। पर वर्त्तमान युरोपीय महासमर छिड़ने पर जापान ने उस पर अपना अधिकार कर लिया है।

(ग) *पैसिफिक महासागर में।*

जर्म्मन न्यू गिनी। इसके अंतर्गत कैसरविलहेम्सलैंड और विस्मार्क आर्चीपिलेगो रक्षित राज्य तथा अन्य कई छोटे छोटे टापू हैं जिनमें से कुछ में आवादी ही नहीं है। इन सब के शासन के लिये एक गवर्नर नियुक्त है।

समोआ (उपनिवेश) इसके अंतर्गत आठ टापू जर्मनी के अधिकार में हैं। यहाँ इनका शासन एक इंपीरियल गवर्नर करता है जिसकी अधीनता में एक देशी हाई चीफ है। हाई चीफ की एक कौंसिल भी है जिसके सब सदस्य देशी हैं।

(वर्त्तमान महायुद्ध में जर्मन उपनिवेशों तथा अधीनस्थ राज्यों का विशेषतः अफ्रिका के उपनिवेशों का बहुत बड़ा भाग अंगरेजों के हाथ में आ गया है।)

(४) अमेरिका के अधीन राज्य।

इसके बहुत से टापू अमेरिका के अधीन हैं जो सब एक गवर्नर जनरल के शासन में हैं। गवर्नर जनरल की सहायता के लिये चार सरकारी अफसरों और चार देशी प्रतिनिधियों का एक कमीशन तथा चार वर्ष के लिये प्रजा द्वारा चुने हुए ८१ सदस्यों की एक सभा है। अमेरिका का उद्देश्य यहां क्रमशः स्वराज्य स्थापित करना है और वह धीरे धीरे इसे कर भी रहा है। इसके अतिरिक्त गुड्डम, परटोटिको, ट्यूटिला, वेक और जांसन टापू, तथा एल्यूशियन टापुओं पर भी अमेरिका के संयुक्त राज्यों का अधिकार है। इन सब स्थानों पर अमेरिका के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एकएक गवर्नर रहता है।

फिलिपाइन।



Printed by G. K. Gurjar at the Sri Lakshmi Narayan Press, Jatanbar, Benares City.

शब्दावली ।

भाषा शब्द	अंग्रेजी शब्द
राष्ट्र	State
शासन-पद्धति; शासन-प्रणाली	Constitution
एकात्मक	Unitary
राष्ट्र-संघटनात्मक	Federal
नियामक, व्यवस्थापक	Legislative
शासक, कार्यकारिणी	Executive
न्याय संबंधी	Judicial
द्वितीय सभा	Second Chamber
स्वापन्न	Sovereign
अस्वापन्न	Non-Sovereign
शिथिल	Flexible
अशिथिल	Rigid
मुख्यराज्य, मध्यराज्य राष्ट्रसंघटन	Central Government
स्थानीय स्वराज्य	Local Self-Government
जन-सम्मति	Referendum
अबाधित जन-सम्मति	Optional Referendum
बाधित जन-सम्मति	Obligatory Referendum
नियामक जन-सम्मति	Initiative
जाति	Nation

भाषा शब्द	अंग्रेजी शब्द
जातीयता	Nationality
स्विस् प्रतिनिधि सभा	National Council
स्विस् राष्ट्रीय उपसमिति	Federal Council
स्विस् राष्ट्रसभा	Standerath
स्विस् जातीय सभा	Federal Assembly
अमेरिकन ,,	Congress
फ्रेंच वा अमेरिकन राष्ट्रसभा ,, अन्तरंग सभा	Senate
फ्रेंच जातीय सभा	National Assembly
मंत्रिसभा	Ministry
मंत्रिसभा की उपसमिति	Cabinet
प्रधान	President
प्रशियन आयव्ययसमिति	The Supreme chamber of Accounts
,, आर्थिक उपसमिति	The Economic Council
प्रशियन जातीय सभा	Landtog
प्रशियन लार्ड सभा	House of Lords
प्रशियन प्रतिनिधि सभा	House of Representatives
जर्मन प्रतिनिधि सभा	Reichstag
जर्मन राष्ट्रसभा	Bandesrath
अंतर्जातीय	International
राइन का संघटन	Confederation of the Rhine
प्रजासत्तात्मक राज्य	Democratic Government
प्रतिनिधिसत्तात्मक राज्य	Representative Government.

भाषा शब्द	अंग्रेजी शब्द
एकसत्तात्मक राज्य	Monarchy
शक्ति संविभाग	Demarcation of Powers
एक राजा का परिमित शक्ति-युक्त राज्य	Limited Monarchy
प्रवक्ता, प्रतिनिधिसभा का प्रधान	Speaker
दल	Party

मनोरंजन पुस्तकमाला ।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

(१) आदर्श-जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्म्मा ।
(५) " २ " "
(६) " ३ " "
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए.
(१०) भौतिक-विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस-सी., एल.टी ।
(११) लालचीन—लेखक वृजनंदन सहाय ।
(१२) कबीरबचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी ए. ।
(१४) बुद्धदेव--लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(१५) मितव्यय--लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन-लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा
(१७) वीरमणि--लेखक श्यामबिहारी मिश्र एम. ए. और शुकदेवबिहारी मिश्र बी. ए. ।
(१८) नेपोलियन बोनापार्ट--लेखक राधामोहन गोकुलजी ।
(१९) शासनपद्धति--लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार ।




गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

